जरूरत वे महसूस करते थे। अुसीमेंसे करुणा और वात्सल्यसे प्रेरित ये लघुकाव्य प्रकट हुअे हैं। शंकराचार्य प्रस्थानत्रयीपर अपने सुप्रसिद्ध भाष्य अगर न लिखते तो वे आचार्य नहीं बनते। लेकिन अिन लघु-काव्योंकी रचना अगर वे न करते तो लोक-दृष्टिसे वे शंकर ही नहीं बनते।

लेकिन लोगोंके लिअे बोली गअी लोक-वाणी दूसरे भी अर्थमें लोक-वाणी बन सकती है। यानी लोगोंकी वाणी भी अुसमें दाखिल हो सकती है। शंकराचार्य अिसके लिअे अपवादरूप सिद्ध नहीं हुअे। संशोधक कहते हैं कि आदि शंकरके वचनोंमें अन्य शंकरोंके भी वचन मिल गअे हैं। पुराने लोकप्रिय लेखकोंका यही नसीब होता है। अिसलिअे प्रस्तुत संकलन को मैंने गुरुबोध यह अेक सामान्य संज्ञा दी है। आचार्यके गुरुपीठसे प्राप्त हुआ बोध समझकर हम अुसे ग्रहण करें।

लेकिन अैसा करते समय हमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि शंकराचार्य समन्वयवादी थे। भाष्यमें अुन्होंने वाद खडा किया है अैसा दिखाओ देता है। लेकिन वह भी समन्वय साधनेके हेतुसे ही है। विद्वानोंके लिअे दार्शनिक विचारोंका समन्वय करना होता है। समाजके लिअे सामाजिक कल्पनाओंका समन्वय करना होता है अिस दूसरी गरजको मद्दनजर रखकर आचार्यने खुद निर्गुणवादी होते हुअे भी सगुणके साथ ही नहीं बल्कि साकारके साथ और वह भी विविध और विचित्र आकारोंके साथ मेल कर लिया था यह बात प्रसिद्ध है। समाजके लिअे पंचायतन-पूजाकी स्थापना करने तक व नीचे अुतर आये। अुसके अनुसार अनेक देवतावाचक स्तोत्रोंकी भी अुन्होंने रचना की। और 'नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त' को अब शायद अलग रखकर या ध्यानमें रखकर

भी गोपिका वल्लभ राधिका राधित" की आरती करनेके लिये वे तैयार हो गये। जिसमें विसंगति न मानी जाय। और केवल जिसी आधारपर वे स्तोत्र आदि शंकराचार्यके नहीं है ऐसा कहनेका आग्रह न रखें। समन्वयकी भूमिकाको मानते हुओ भी जो वचन गले उतारना संभव न हो वे उनकी कोओ आवश्यकता नहीं है। यह दृष्टि रखकर मैंने यह संकलन किया है। इस साहित्यका करीब ओक चौथाओ हिस्सा ही चुना है जिसलिये छांटने लायक छोड़ देनेमें जरा भी कठिनाओ नहीं हुओ।

* * *

घर-बोझका स्वरूप समूचे जीवनका व्याप्त करनेवाला है। शंकराचार्य मुक्तिवादी होनेपर भी उनकी सिखावनमें सामान्य नीतिबोधसे लेकर मौनमाश्रम तकके सब साधनोंका समावेश हो जाता है। संकलन करते समय इस दृष्टिसे प्रकरणोंकी रचना की है।

पहले प्रकरणमें नीति-विचार चित्तशुद्धि और तदुपयोगी जीवनचर्या यह सामान्य उपयोगका विषय लिया है।

दूसरे प्रकरणमें साधन चतुष्टयका प्रतिपादन किया है। साधन चतुष्टय आरमसात् नहीं होता है तब तक ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकार प्राप्त नहीं होता यह आग्रह शंकराचार्यने लगाया है। अनमर पाश्चात्य विद्वानोंपर जिस तरहका आग्रह नहीं लगाते हैं। जिसीलिये उनके ग्रंथ वाग्-वैखरी शास्त्र-झरी जैसे होते हैं। विशिष्ट गुण-विकास होनेपर ही ज्ञान-साधना हजम होती है यह अनुभवकी बात है।

तीसरे तथा चौथे प्रकरणमें भक्ति-स्तोत्रों और वेदान्त-स्तोत्रोंका संग्रह है। ये गुण स्थिमें गुनगुनाते रहें। जिस तरह गुनगुनाने ही वे जीवनमें ओत प्रोत हो जायेंगे यह उनमें सामर्थ्य है।

पाँचवाँ प्रकरण वाक्य-विचारोंका। वेदान्तमें अहं ब्रह्मास्मि तत् त्वमसि अित्यादि महावाक्योंके चिंतनको साधनाका अेक विशेष प्रकार माना है। भक्तिमार्गमें नाम-स्मरणकी जो महिमा है वही वेदान्तमें वाक्य विचारकी है। नामस्मरणमें मुख्य अपेक्षा प्रेमकी रहती है महावाक्य-चिंतनमें विचार प्रधान रहता है।

प्रकरण ६ से ८ में छोटे-बड़े प्रकरण-ग्रंथोंमेंसे बहुत सारा अनावश्यक विस्तार कठोरतापूर्वक काटकर परिमित साररूप अंश लिया है। चिंतनके लिअे अुसमें बहुत लाभ मिल सकता है। अुसके बारेमें अिस छोटीसी प्रस्तावनामें अधिक विवरणकी अपेक्षा नहीं कर सकते। सिर्फ अेक ही बात कहनेकी अिच्छा होती है— ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर अिस प्रसिद्ध वेदान्त-डिंडिमका (ढींढोरेका) मैंने अपने लिअे कुछ रूपान्तर कर लिया है। मेरा श्लोक अिस प्रकार है—

"वेद-वेदान्त-गीतानां विनुना सार उद्धृत ।
ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्य-शोधनम्

अिससे वेदान्तकी ध्वनि बदलती है असा मुझे नहीं लगता। बल्कि अुससे वेदान्तका विज्ञानयुगके साथ अच्छा मेल बैठता है।

नवाँ प्रकरण अपरोक्षानुभूति। मुझे यह शंकराचार्यका शिरोमणि ग्रंथ लगता है। बिलकुल थोड़ेमें लेकिन अंगोपांग सहित। मूल १४४ श्लोक हैं अुनमेंसे चुनिंदा १ श्लोक निकाल लिये हैं। ब्रह्म-विद्या और योग-विद्या मिलाकर कुल परमार्थ-विचारमें कहीं भी कसर नहीं रखी है। पतंजलिका योग-विधि त्रिपञ्चांग (याने +१=८ अंगोंका) है। आचार्यने अुसमें वृद्धि करके नया योग-विधि बनाया है। वह भी त्रिपञ्चांग (याने ३×५=१५

अंगोंका) है। पूर्व विचारोंका समन्वय करके साथ-साथ आचार्य असमें किस तरह वृद्धि करते हैं जिसका यह अेक अुदाहरण है।

दसवाँ प्रकरण विवेक-चूडामणि। जिसमें शंकराचार्यकी काव्य कला प्रकट हुअी है। विविध छन्दोंसे सज हुअे प्रसन्न मधुर काव्यका आस्वाद जिसमें ले सकते हैं। जिसकी रचना गीताके दूसरे अध्याय के अनुसार की है। जिसमें ज्ञानी पुरुषके लिअे स्थितप्रज्ञ और जीवन्-मुक्त यह दो संज्ञाअें दी हैं। जिनमेंसे स्थित-प्रज्ञ गीताका पारिभाषिक शब्द है। जीवन्-मुक्त शब्द गीतामें यद्यपि नहीं आया है फिर भी गीताके पाँचवें अध्यायमें अुसीके चरित्रका निरूपण है। जिहैव तैर्जित सर्ग शक्नोतीहैव य सोढु अभितो ब्रह्म-निर्वाण वर्तते और अन्तमें विगतेच्छाभयक्रोधो य सदामुक्त अेव स ये वचन जीवन्-मुक्त जिस सामासिक शब्दका विग्रह पेश करनेवाले यह वचन हैं।

यह जिस संकलनका संक्षेपमें स्वरूप है।

* * *

अब शंकराचार्यका तत्त्वज्ञान संक्षेपमें देखेंगे। शांकर-विचार, अद्वैत यह तो सब जानते ही हैं। अद्वैत याने प्रेमकी परिसीमा। यह सारी दुनिया मेरा ही रूप है यह है अद्वैतकी भूमिका। जिस भूमिकामें प्रेम अधिक रहेगा या अपनेसे जगत्की भिन्नताका भास करानेवाली भूमिकामें प्रेम अधिक रहेगा? छिछले पानीकी छलछलाहट गहरे पानीमें नहीं होती है। अुसी तरह अद्वैतमें प्रेमकी छलछलाहट नहीं दिखाअी देगी लेकिन गहराअी होगी। जिसलिअे अद्वैतानुभूतिकी साधना प्रेमके और भूतदयाके विस्तारकी ही साधना

होगी। अिसीलिअे शंकराचार्य भगवान् विष्णुकी प्रार्थना करते हैं— 'भूतदयां विस्तारय'।

अद्वैतमें जगत् अपनेसे भिन्न नहीं मानते अितना ही नहीं बल्कि अीश्वरको भी भिन्न नहीं मानते यहाँ तक बात है। अितना बोझ अुठानेमें मन हिचकिचाता है। भक्ति मानो कुंठित होने लगती है। अिसमेंसे कुछ न कुछ मार्ग निकलना चाहिअे। आचार्यने वह काफी खुला कर दिया है। वह कहते हैं प्रभो तुझमें और मुझमें भेद नहीं है यह वास्तविक सत्य है। फिर भी नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। समुद्रका तरंग कहलाता है, तरंगोंका समुद्र हो नहीं सकता। भक्तिके लिअे अिससे अधिक आजादीकी आवश्यकता नहीं है।

अीश्वर, जगत् और मैं अिनमें अगर अद्वैत है तो यह त्रिक कहाँसे आया? अिसपर आचार्यका अुत्तर है मायाके कारण। और माया मिथ्या है यह तो शांकर-सिद्धांतका निचोड़ है। मिथ्या याने न सही न झूट केवल भासरूप। निराकारमें आकार दिखाअी देता है यह भास। अिसका अुदाहरण अपक्व चित्तके लिअे रज्जुसर्प और परिपक्व चित्तके लिअे सुवर्ण-कंकण (प्र ५० श्लो ५–६) मायाकी अिस अुपपत्तिसे जिस बुद्धिका समाधान नहीं होगा अुसका दूसरे किसी अुपपत्तिसे वह होगा यह मैं नहीं मानता।

थोड़ेमें तत्त्वज्ञान समाप्त हुआ। अिसके पेटमें कर्मयोग चित्तशुद्धिकी साधना भक्ति ध्यान वैराग्य गुण-विकास श्रवण मनन अित्यादि सब आ जाते हैं। आते हैं और जाते हैं यह है अिसकी खूबी। सब साधनाओंके लिअे यहाँ अवकाश है। किसीको भी मनाही नहीं है। लेकिन आना है वह वापिस जानेकी तैयारीसे आना है। हमेशा लिअे घर बनाकर रहनेकी गुँजाअिश नहीं।

अुपन्देश-पंचकम् (प्र ४२) के प्रकरणमें समूचा साधनमार्ग सिलसिलेवार पेश किया है। साधमाकी कल्पनाके बारेमें शांकर विचारमें कहीं भी संकुचितता नहीं दिखाअी देती। किसी भी साधनाका शंकराचार्य बोझ नहीं होने देते। वैसे कभी साधक किसी न किसी साधनामें गिरफ्तार हुअे दिखाअी देते हैं। लेकिन साधना छूटनेके लिअे है, बंद होनेके लिअे नहीं यह बात अगर ध्यानमें न रही तो पुष्प ही भारस्वरूप बननेकी नौबत आती है। शांकर-विचारका आत्यंतिक आकर्षण मुझे यही है।

शंकराचार्यका बहुत बड़ा विचार ऋण मेरे सिरपर है। देह भावनामेंसे मुक्त होना यही अुऋण होनेका अुपाय है। वह प्रक्रिया मेरी निरंतर जारी है। और मुझे भरोसा है कि अीश्वर कृपासे वह पूर्ण होगी। तब तक सबको प्रसाद बाँट देना भी अुऋण होनेका अेक स्थूल अुपाय हो सकता है। अुसीके लिअे यह प्रयास है।

अब हमारी तमिलनाडकी भूदान-यात्रा समाप्त हो रही है और केरल प्रांतमें प्रवेश हो रहा है। केरलके कालडी ग्राममें जो कि शंकराचार्यका जन्म-स्थान है अिस सालका सर्वोदय-सम्मेलन होना तय हुआ है। यह अेक अीश्वरी कृपाका योग है। क्योंकि सम्मेलन वहाँ तक कर्नाटकमें हो अैसी हम सबकी अिच्छा थी और प्रयत्न भी था। लेकिन समालवाड़ ग्रामदानकी घटनाने तमिलनाडमें सम्मेलन होनेकी प्रेरणा दी। केरलकी यात्रा अधिक समयतक करनी और सम्मेलन केरलमें रखना पड़ा। तीन साल पहले भगवान बुद्धकी बोधगयामें सम्मेलन होनेका योग आया था। और आज आचार्यके जन्मस्थानमें वह होने जा रहा है। यज्ञमें और अहिंसाके समन्वयकी

घोषणा हमने बोधगयामें की थी। अुसपर मानो श्रीहरी मान्यताकी मुहर लग रही है।

बत्तीस साल पहले वायकम सत्याग्रहके निरीक्षणके लिअे गांधीजीकी आज्ञासे केरल प्रांतमें मेरा आना हुआ था। अुस समय कालडी ग्राम पास होते हुअे भी प्राप्त कार्यमेंसे समय निकाल कर वहाँ जाना अुचित नहीं लगा। अुस समय हृदयमें जो अुत्कट भावना भरी थी अुसका चित्रण गीता प्रवचनके बारहवें अध्यायमें किया है। जितने वर्षोंके बाद अब कालडी जाना होगा वहाँ सर्वोदय समेलन होगा और वहीं प्रकाशकोंकी योजनाके अनुसार गुरुबोधका प्रकाशन अर्थात् आचार्यके चरणोंमें समर्पण होगा। यह सारी श्रीहरी लीला देखकर मन अुसके चरणोंमें लीन होता है और पिगल जाता है।

तिरुवेल्ली
९–४–५७

विनोबा

---

४१ उपदेश-पंचकम् ७६
४२ परा पूजा ७७

V वाक्य-विचारः

४३ लघु-वाक्य-वृत्ति ८१
४४ वाक्य-सुधा ८१
४५ वाक्य-वृत्ति ८९

VI बोध-सोपानः

४६ आत्म-बोधः ९७
४७ बोध-गीत-कथा १
४८ अद्वैत-मर्यादा १ १
४९ वेदान्त-डिंडिम १ २
५० श्रुति-तात्पर्यम् १ ९
५१ अद्वैतोपमानम् १ ४
५२ ब्रह्मानुचिन्तनम् १ ६
५३ उन्मनी १ ७
५४ मह्यं नम ११
५५ मौनं आश्रये ११२

VII ज्ञान-चर्चा

५६ नव-मतवादाः ११५
५७ शून्यपक्ष-निरसनम् ११८
५८ सुख-प्रयत्नो व्यर्थ १२२
५९ ध्यानसहकारि साधनापेक्षा १२५
६० गीता-रहस्यम् १२७

VIII उपनिषत्-स्तुतिः

६१ ब्रह्मविचारंभ १३१
६२ वेदान्त-श्रवणं कुर्यात् १३४
६३ ज्ञान-निष्ठा कर्तव्या १३५
६४ अ-निर्मोक्षोऽहम् १३६
६५ हेतुः सर्व-व्यवस्थानाम् १३७
६६ मनो हि अविद्या १३८
६७ मनसः शोधनम् १४०
६८ मनः संशोधनम् १४२
६९ मनसः साक्षी १४४
७० मानसं तीर्थम् १४६
७१ जीवन्मुक्तानंदलहरी १४६
७२ षट्पदी १४८

IX अपरोक्षानुभूति

७३ साधन-चतुष्टयम् १५१
७४ विचारः १५४
७५ आत्मानात्मनो पार्थक्यम् १५५
७६ आत्मानात्म-विभागो मिथ्या १५६
७७ दृष्टान्त-संग्रहः १५८
७८ प्रारब्ध निरासः १५९
७९ निषेधाभासि १६२
८० समाधेर् विघ्नाः १६३
८१ ब्रह्म-वृत्ति १६४
८२ अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म भावना १६५

गुरुबोध

• • •

जीवन-शोधनम्

प्रकरणानि

१	ततः किम्	श्लोक-संख्या ६
२	नीति-वचनम्	१६
३	भज गोविन्दम्	३०
४	प्रबोध-सुधा	१५
५	चित्त-वेगः	८
६	चित्त-प्रसादः	१०
७	जीवन-चर्या	१५
		१००

१ ततः किम्

१ लब्धा विद्या राज-मान्या ततः किं
प्राप्ता सम्पत् प्राभवाढ्या ततः किम्
तृप्तो मृष्टाशनादिना वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्

२ दृष्टा नाना चारु-देशाम् ततः किं
पुष्टाभेष्टा बंधु-वर्गास् ततः किम्
नष्ट दारिद्र्यादि-दुःखं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्

३ स्नातं तीर्थे जह्नुजादौ ततः किं
दानं दत्तं अष्ट-संख्यं ततः किम्
जप्ता मन्त्राः कोटिशो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्

४ अर्थैर् विप्रास् तर्पिता वा ततः किं
यज्ञैर् देवास् तोषिता वा ततः किम्
क्षीणा प्राणाः मन-साकाम् ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्

५ युद्धे शत्रुर् निर्जितो वा ततः किं
भूयो मित्रैः पूरितो वा ततः किम्
योगैः प्राप्ताः सिद्धयो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्

६ यस्येदं हृदये सम्यग् अनात्मश्री-विगर्हणम्
सदोदेति, स एवात्म-साक्षात्कारस्य भाजनम्

[अनात्मश्री-विगर्हणम्]

२ नीति-वचनम्

१ भगवन् किमुपादेयं गुरु-वचनं, हेयमपि च किमकार्यम्
को गुरुरधिगत-तत्त्वः शिष्यहितायोद्यतः सततम्

२ त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषां, संसारसंतति-च्छेदः
किं मोक्ष-तरोर् बीजं सम्यग् ज्ञानं क्रिया-सिद्धम्

३ कः पथ्यतरो धर्मः, कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा गुरुषु

४ किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव
किं मनुजेष्विष्टतमं स्व-पर-हितायोद्यतं जन्म

५ मदिरेव मोह जनकः कः स्नेहः, के च दस्यवो विषयाः
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम

६ कथय पुनः के शशिनः किरण-समाः सज्जना एव
को नरकः पर-वशता, किं सौख्यं सर्वसंग विरतिर् या

७ किं सत्यं भूत-हितं, प्रियं च किं प्राणिनां असवः
को ऽनर्थफलो मानः, का सुखदा साधुजन-मैत्री

८ आ-मरणात् किं शल्यं प्रच्छन्नं यत् कृतं पापम्
कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने

९ कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दया-प्रधानाय
को ऽन्धो यो ऽकार्य-रतः, को बधिरो यो हितानि न शृणोति

१० को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति
किं दानमनाकांक्षं, किं मित्रं यो निवारयति पापात्

११ चिंतामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तत् चतुर् भद्रम्
किं तद् वदन्ति भूयो विधूत-तमसो विशेषण

१२ दानं प्रियवाक्-सहितं, ज्ञानं मगर्वं, क्षमान्वितं शौर्यम्
वित्तं त्याग-समेतं, दुर्लभमेतत् चतुर् भद्रम्

१३ किं लघुताया मूलं प्राकृत-पुरुषेषु या याच्ञा
रामादपि कः शूरः स्मरशर-निहतो न यश् चलति

१४ किमभय मिह वैराग्यं, भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम्
को हि भगवत्-प्रियः स्यात् यो ऽन्यं नोद्वेजयेद् मनुद्विग्न:

१५ को वर्धते विनीत, को वा हीयेत यो दृप्त
किं भाग्यं देहवतां आरोग्यं, कः फली कृषिकृत्

१६ किं दुष्करं नराणां यत् मनसो निग्रह: सततम्
केषां अमोघ-वचनं ये च पुन: सत्य-मौन-शम-शीला:

[प्रश्नोत्तर रत्न–मालिका]

३ भज गोविंदम्

१ भज गोविंदं भज गोविंदं, भज गोविंदं मूढ-मते
प्राप्ते संनिहिते मरणे, न हि न हि रक्षति 'डुकृञ् करणे'

२ मूढ जहीहि धनागम-तृष्णां, कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्
यल् लभसे निज-कर्मोपात्तं वित्तं, तेन विनोदय चित्तम्

३ अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुख-लेशः सत्यम्
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा विहिता रीतिः

४ का ते कांता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः
कस्य त्वं कः कुत आयातः, तत्त्वं चिंतय यदिदं भ्रातः

५ मा कुरु धन जन-यौवन-गर्वं, हरति निमेषात् कालः सर्वम्
मायामय मिद मखिल हित्वा, ब्रह्म-पदं त्व प्रविश विदित्वा

६ दिन-यामिन्यौ सायं प्रातः, शिशिर-वसन्तौ पुन रायातः
कालः क्रीडति गच्छति आयु , तदपि न मुञ्चति आशा-वायुः

७ पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः, पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः
पुनरपि अयन पुनरपि वर्षं, तदपि न मुञ्चति आशामर्षम्

८ पुनरपि जनन पुनरपि मरण, पुनरपि जननी-जठरे शयनम्
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया पारे पाहि मुरारे

९ जटिला मुण्डी लुञ्छित-केशः, काषायाम्बर-बहु-कृतवेषः
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः, उदर-निमित्त बहु-कृतवेषः

१० अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशन-विहीनं जातं तुण्डम्
वृद्धा याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चति आशा पिण्डम्

११ अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः, रात्रौ चुबुक-समर्पित जानुः
करतल-भिक्षा तरुतल-वासः, तदपि न मुञ्चति आशा-पाशः

१२ यावद् वित्तोपार्जन-सक्तः, तावत् निज-परिवारो रक्तः
पश्चात् जीवति जर्जर-देहे, वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे

१३ यावत् पवनो निवसति देहे, तावत् पृच्छति कुशलं गेहे
गतवति वायौ देहापाये, भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये

१४ बालस् तावत् क्रीडा-सक्तः, तरुणस् तावत् तरुणी-रक्तः
वृद्धस् तावत् चिंता-मग्नः, परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः

१५ वयसि गते कः काम-विकारः, शुष्के नीरे कः कासारः
क्षीणे वित्ते कः परिवारः, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः

१६ का ते ऽष्टादश-देशे चिंता, वातुल किं तव नास्ति नियंता
क्षण-मिह सज्जन-संगति-रेका, भवति भवार्णव-तरणे नौका

१७ गेय गीता-नामसहस्रं, ध्येय श्रीपति-रूप मजस्रम्
नेय सज्जन-संगे चित्तं, देय दीन जनाय च वित्तम्

१८ भगवद्गीता किंचि-दधीता, गंगाजल-लवकणिका पीता
सकृदपि येन मुरारि-समर्चा, क्रियते तस्य यमेन न चर्चा

१९ का ऽहं कस् त्वं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः
इति परिभावय सर्व-मसारं, विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न-विचारम्

२० कामं क्रोधं लोभं मोहं, त्यक्त्वा ऽऽत्मानं भावय कोऽहम्
आत्मज्ञान विहीना मूढाः, ते पच्यन्ते नरक-निगूढाः

२१ सुरमंदिर-तरुमूल-निवासः, शय्या भू-तल-मजिनं वासः
सर्वपरिग्रहभोग-त्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः

२२ शत्रौ मित्रे पुत्रे बंधौ, मा कुरु यत्नं विग्रह-संधौ
भव सम चित्तः सर्वत्र त्वं वांछसि अचिराद् यदि विष्णुत्वम्

२३ त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः, व्यर्थ कुप्यसि मयि असहिष्णुः
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मान सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्

२४ नलिनीदलगत-जल मतितरल, तद्वत् जीवित मतिशय-चपलम्
विद्धि व्याध्यभिमान-ग्रस्त, लोक शोक-हत च समस्तम्

२५ प्राणायाम प्रत्याहारं, नित्यानित्य-विवेक विचारम्
जाप्यसमेत-समाधि-विधानं, कुरु अवधान महदवधानम्

२६ कुरुते गगासागर-गमनं, व्रत-परिपालन मथवा दानम्
ज्ञान-विहीन सर्व-मतेन, मुक्तिर् न भवति जन्म-शतेन

२७ गुरुचरणाम्बुज-निर्भरभक्त, ससारात् अचिरात् भव मुक्तः
सेन्द्रियमानस-नियमात् एव, द्रक्ष्यसि निज-हृदयस्थ देवम्

२८ रथ्या-कर्पट–विरचित-कन्थ, पुण्यापुण्य-विवर्जित-पन्थ
योगी योग नियोजित-चित्तो, रमते बालोन्मत्तवदेव

२९ योग-रतो वा भोग-रतो वा, सग-रतो वा सग-विहीन
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्त, नन्दति नन्दति नन्दत्येव

३० सत्-सगत्वे निःसगत्व, निःसगत्वे निर्मोहत्वम्
निर्मोहत्वे निश्चलितत्त्वं, निश्चलितत्त्वे जीवन्मुक्तिः

[मोह-मुद्गरः]

ः ४ प्रबोध-सुधा

१ वैराग्य आत्म-बोधो भक्तिश् चेति त्रयं गदितम्
मुक्तेः साधन मादौ तत्र विरागो वितृष्णता प्रोक्ता

२ सा च अहं-ममताभ्यां प्रच्छन्ना सर्व-देहेषु

३ देहः किमात्मकोऽयं, कः सम्बन्धोऽस्य वा विषये
एवं विचार्यमाणे ऽहंता-ममते निवर्तेते

४ आयुः क्षण-लवमात्रं न लभ्यते हेम-कोटिभिः क्वापि
तत् चेत् गच्छति सर्वं मृषा ततः काधिका हानिः

५ नरदेहातिक्रमणात् प्राप्तौ पश्वादि-देहानाम्
स्व-तनावपि अज्ञानं परमार्थस्यात्र का वार्ता

६ परमात्मा सच्चिद्रूपः क्व मांस-रुधिरास्थि-निर्मितो देहः
इति या लज्जति धीमान् इतर-शरीरं स किं मनुते

७ संसृति-पारावारं अगाध-विषयोदकेन संपूर्णम्
नृ-शरीरं मधु-तरणं कर्म-समीरैर् इतस्ततश् चलति

८ छिद्रैर् नवभि रुपेता जीवा नावका-पतिर् महान् अलसः
छिद्राणां अनिरोधात् जल-परिपूर्णा पतत्यधः सततम्

९ विषयेंद्रिययोर् योग निमेष-समयेन यत् सुखं भवति
विषये नष्टे दुःख यावज्जीव च तत् तयोर् मध्ये

१० हेय मुपादेय वा प्रविचार्य सुनिश्चितं तस्मात्
मल्प-सुखस्य त्यागात् अनल्प-दुःख जहाति सुधी

११ *ममताभिमान-शून्यो विषयेषु पराङ्मुख पुरुष*
तिष्ठन्नपि निज-सद्‌न न बाध्यते कर्मभि क्वापि

१२ वैराग्य भाग्य भाज प्रसन्न-मनसा निराशस्य
अप्रार्थित-फल-भाक्तु पुसो जन्मनि कृतार्थतेह स्यात्

१३ उत्पन्न ऽपि विराग विना प्रबोधं सुख न स्यात
स भवत् गुरूपदेशात् तस्माद् गुरु माश्रयेत् प्रथमम्

१४ यथा प्रतीति रुक्ता शास्त्राद् गुरुतस् तथा त्मनस् तत्र
शास्त्र-प्रतीति रादौ यद्वत् मधुरो गुडो ऽस्तीति

१५ अथ गुरु-प्रतीतिर दूराद् गुड-दर्शन यद्वत्
आत्म-प्रतीति रस्माद् गुड भक्षण-ज सुख यद्वत्

[प्रबोध-सुधाकर]

५ चित्त-वेग

१ दृष्टं कदापि रुष्टं शिष्टं तुष्टं च निंदति स्तौति
चित्तं पिशाचमसकृद् राक्षस्या तृष्णया व्याप्तम्

२ दंभाभिमान-लोभैः काम-क्रोधोरुमत्सरैश् चेतः
आकृष्यते समन्तात् श्वभिरिव पतितास्थिवत् मार्गे

३ तस्मात् शुद्ध-विरागो मनोऽभिलषित त्यजेत् सर्वम्
तदनभिलषित कुर्यात् निर्व्यापारं ततो भवति

४ वर्षाम्भः-प्रचयात् कूपे गुरु-निर्झरे पयः क्षारम्
ग्रीष्मेणैव तु शुष्के माधुर्यं भजति तत्राम्भः

५ तद्वत् विषयोद्रिक्तं तमः-प्रधानं मनः कलुषम्
तस्मिन् विराग-शुष्के शनैः शनैर् आविर्भवेत् सत्त्वम्

६ नग-नगर-दुर्ग-दुर्गम-सरितः परितः परिभ्रमत् चेतः
यदि नो लभते विषयं विष-यंत्रितमिव खेद-मायाति

७ तुंबी-फलं जलांतर् बलात् अधः क्षिप्तमपि उपैत्यूर्ध्वम्
तद्वत् मनः स्वरूपे निहितं यत्नात्, बहिर् याति

८ प्राणस्पंद-निरोधात् सत्संगात् वासना-त्यागात्
हरिचरण भक्तियोगात् मनः स्ववेगं जहाति शनैः

[प्रबोध-सुधाकर]

६ चित्त-प्रसाद

१ यमेषु निरतो यस् तु नियमेषु च यत्नतः
विवेकिनस् तस्य चित्तं प्रसाद मधिगच्छति

२ आसुरीं संपदं त्यक्त्वा भजेत् यो दैव-संपदम्
मोक्षैककांक्षया नित्यं तस्य चित्तं प्रसीदति

३ परद्रव्य-परद्रोह-परनिंदा-परस्त्रियं
नालंबते मनो यस्य तस्य चित्तं प्रसीदति

४ आत्मवत् सर्व भूतेषु यः समत्वेन पश्यति
सुख दुःख विवेकेन तस्य चित्तं प्रसीदति

५ अत्यंत श्रद्धया भक्त्या गुरु मीश्वर मात्मनि
यो भजत्यनिशं क्षांतम् तस्य चित्तं प्रसीदति

६ शिष्टाश्रम मीक्षार्जन मार्यसेवां, तीर्थाटनं स्वाश्रमधर्म-निष्ठाम्
यमानुवर्तिं नियमानुवर्तिं, चित्त-प्रसादाय वदन्ति तज्ज्ञाः

७ कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनाम्
पूति-पर्युषितादीनां त्यागः सत्त्वाय कल्पते

८ श्रुत्या सत्त्व-पुराणानां सेवया सत्त्व-वस्तुनः
अनुवृत्त्या च साधूनां सत्त्व-वृत्तिः प्रजायते

९ यस्य चित्त निर्विषय हृदयं यस्य शीतलम्
तस्य मित्रं जगत् सर्वं तस्य मुक्तिः कर-स्थिता

१० हित-परिमित-भोजी नित्य मेकांत-सेवी
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्प-निद्रा-विहारः
अनुनियमन-शीलो यो भज त्युक्त-काले
स लभत इह शीघ्रं साधुचित्त-प्रसादम्

[प्रबोध-सुधाकर]

७ जीवन-चर्या

१ प्रातः स्मरामि देवस्य सवितुर् भर्ग आत्मनः
वरेण्य तद् धियो यो नश् चिदानंदे प्रचोदयात्

२ अत्यंत-मलिनो देहो देही चात्यंत-निर्मलः
असंगो ऽहमिति ज्ञात्वा शौच एतत् प्रचक्षते

३ स मना मौनमत् नित्य क्रीड त्यानंद-वारिधौ
सुस्नातम् तेन पूतात्मा सम्यग्-विज्ञान-वारिणा

४ अथात्म-स्मरण कुर्यात् प्राणापान-निरोधतः
मनः पूर्व समाधाय सम-कायो यथार्थवि

५ लय-विक्षेपयो' सद्यो मनस् तत्र निरामिषम्
स सचि' साधितो येन स मुक्तो नात्र संशयः

६ सर्वत्र प्राणिनां देहे जपो भवति सर्वदा
हंसः सोऽहं इति ज्ञात्वा सर्व-बंधैर् विमुच्यते

७ तर्पण स्व-सुखेनैव स्वेंद्रियाणां प्रतर्पणम्
मनसा मन आलोक्य स्वय आत्मा प्रकाशते

८ आत्मनि स्व-प्रकाशाग्नौ चित्त एकाहुतिं क्षिपत्
अग्निहोत्री स विज्ञेय', इतरा नाम-धारका'

९ देहो देवालय' प्रोक्तो देही देवो निरंजन'
अर्चित' सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते

१० अतीतानागतं किंचिद् न स्मरामि न चिंतये
राग-द्वेष विना प्राप्त भुंजाम्यत्र शुभाशुभम्

११ अभयं सर्व-भूतानां दान आहुर् मनीषिणः
निजानंदे स्पृहा नान्य वैराग्यस्यावधिर् मतः

१२ ब्रह्माध्ययन-संयुक्ता ब्रह्मचर्या-रत' सदा
सर्वं ब्रह्मेति यो वेद ब्रह्म-चारी स उच्यते

१३ गृहस्थो गुण-मध्यस्थः शरीरं गृहमुच्यते
गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धिमान्

१४ किं व्रतैश् च तपोभिश् च यस्य ज्ञानमयं तपः
हर्षामर्ष-विनिर्मुक्तो वानप्रस्थः स उच्यते

१५ देहान्यासो हि संन्यासो नैव काषाय-वाससा
नाहं देहो ऽहमात्मेति निश्चयो न्यास-लक्षणम्

[सदाचारानुसंधानम्]

साधना

प्रकरणानि

		श्लोक-संख्या
१	साधनोपदेशः	३
२	नित्यानित्यवस्तु–विवेकः	४
३	वैराग्यम्	२०
४	शमादि–षट्कम्	५३

	षट्कम्	१
१	शम	१४
२	दमः	८
३	तितिक्षा	१
४	उपरतिः	१
५	श्रद्धा	५
६	समाधानम्	५

५	मुमुक्षुत्वम	२०
		१००

[सर्ववेदांत सिद्धांत-सारसंग्रह]

१ साधनोद्देश

१ चत्वारि साधनान्यत्र वदन्ति परमर्षय
मुक्तिर् येषां नु सद्भावे नाभावे सिध्यति ध्रुवम्

२ आद्य नित्यानित्यवस्तु-विवेकः साधन मतम्
इहामुत्रार्थ-फलभोग विरागो द्वितीयकम्

३ शमादिषट्क-सपत्तिस् तृतीयं साधन मतम्
तुरीयं तु मुमुक्षुत्व साधनं शास्त्र-समतम्

२ नित्यानित्यवस्तु विवेक

१ ब्रह्मैव नित्यं अन्यत् तु अनित्यमिति वेदनम्
सो ऽयं नित्यानित्यवस्तु-विवेक इति कथ्यते

२ मृदादि-कारण नित्य त्रिषु कालेषु दर्शनात्
घटाद्यनित्य तत्-कार्यं यतस् तन्-नाश ईक्ष्यते

३ तथैवैतत् जगत् सर्वं अनित्यं ब्रह्म-कार्यत
तत्-कारण पर ब्रह्म भवेत् नित्यं मृदादिवत्

४ सर्वस्या नित्यत्व सावयवत्वेन सर्वत सिद्ध
वैकुण्ठादिषु नित्यत्व-मतिर् भ्रम एव मूढ-बुद्धीनाम्

३ वैराग्यम्

१ ऐहिकामुष्मिककार्येषु अनित्यत्वेन निश्चयात्
नैःस्पृह्यं तुच्छ-बुद्ध्या यत् तद् वैराग्यं इतीर्यते

२ कामस्य विष्ठावदसार-बुद्धिर्, भोग्येषु सा तीव्र-विरक्ति रिष्यते
प्रदृश्यते वस्तुनि यत्र दोषो, न तत्र पुंसो ऽस्ति पुनः प्रवृत्तिः

३ विरक्तितीव्रत्व-निदानं माहुर्, भोग्येषु दोषेक्षणमेव सन्तः
अत्रापि चान्यत्र च विद्यमान–पदार्थ-संमर्शनमेव कार्यम्

४ यत्रास्ति लोके गति-तारतम्य, उच्चावचत्वान्वितमत्र तस्कृतम्
यथेह तद्वत् खलु दुःखमस्ती त्यालोच्य को वा विरतिं न याति

५ गत ऽपि तोये सुषिरे कुलीरो हातुं अशक्तो म्रियते विमोहात्
यथा, तथा गेह-सुखानुषक्ता, विनाश्र मायाति नरो भ्रमेण

६ आशा-पाश-शतेन पाशित-पदो नोत्थातुमेव क्षमः
काम-क्रोध-मदादिभिः प्रतिभटैः संरक्ष्यमाणो ऽनिशम्
संमोहावरणेन गोपनवतः संसार-कारागृहात्
निर् गन्तु त्रिविधैषणा-परवशः कः शक्नुयात् रागिषु

७ काम एव यमः साक्षात् तृष्णा वैतरणी नदी
विवेकिनां मुमुक्षूणां निलयम् तु यमालयः

८ यमस्य कामस्य च तारतम्यं, विचार्यमाणं महदस्ति लोके
हितं करोत्यस्य यमोऽप्रियः सन्, कामस् त्वनर्थं कुरुते प्रियः सन्

९ यमो ऽसतामेव करोत्यनर्थं, सतां तु सौख्यं कुरुते हितं सन्
कामः सतामेव गतिं निरुन्धन्, करोत्यनर्थं असतां नु का कथा

१० विषस्य वृद्धिं स्वयमेव कांक्षन्, प्रवर्तकं कामि जनं ससर्ज
तेनैव लोकः परिमुह्यमानः प्रवर्धते चन्द्रमसेव अब्धिः

११ कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम्
सङ्कल्पस्य परित्यागः उपायः सुलभो मतः

१२ श्रुते दृष्टेऽपि वा भोग्ये यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि
समीचीनत्वधी-त्यागात् कामो नाप्नोति कर्हिचित्

१३ धन भय-निबन्धनं सततं-दुःख-संवर्धनं
प्रचुरतर-कर्दनं स्फुरित-बन्ध-संवर्धनम्
विशिष्टगुण-बाधनं कृपणधी-समाराधनम्
न मुक्ति-गति-साधनं भवति नापि हृच्छोधनम्

१४ सतामपि पदार्थस्य लाभात् लाभः प्रवर्धते
विवेकः लुप्यते लोभात् तस्मिन् लुप्ते विनश्यति

१५ दृढस्यलाभे निःस्वस्य लाभ लोभो दृढत्यमुम्
तस्मात् सतापकं वित्तं कस्य सौख्यं प्रयच्छति

१६ अलाभात् त्रि-गुण दुःखं वित्तस्य व्यय-संभव
ततो ऽपि त्रिगुणं दुःख दुर्-व्यय विदुषामपि

१७ सर्वदा विजने वने जन-पद मेतौ निरीतौ च वा
चौरैर् वापि तथेतरैर् नर-वरैर् युक्ता वियुक्ता ऽपि वा
निःस्व: स्वस्थतया सुखेन वसति ह्लादीयमाणो जनैः
क्लिश्यात्येव धनी सदाकुल-मतिर् भीतश्च पुत्रादपि

१८ तस्मात् अनर्थस्य निदानमर्थ:, पुमर्थ-सिद्धिर् न भवत्यनेन
ततो वनान्त निवसन्ति सन्त:, सन्यस्य सर्वं प्रतिकूल मर्थम्

१९ विवेकजां तीव्र-विरक्तिमेव, मुक्तेर् निदान निगदन्ति सन्त:
तस्मात् विवेकी विरतिं मुमुक्षु:, संपादयत् तां प्रथम प्रयत्नात्

२० वैराग्य-रहिता एव यमालय इवालये
क्लिश्यन्ति त्रिविधैम् तापैर् मोहिता अपि पण्डिता:

४ शमादि षट्कम्

१ शमा दमस् तितिक्षोपरति श्रद्धा तत: परम्
समाधानमिति प्रोक्त षड् एवैते शमादय:

१ शम

१ एक-वृत्त्यैव मनस: स्व-लक्ष्य नियत-स्थिति:
शम इत्युच्यते सद्भि: शम-लक्षण-वेदिभि:

२ उत्तमो मध्यमश् चैव जघन्य इति च त्रिधा
निरूपितो विपश्चिद्भिस् तत्तल्-लक्षण-वेदिभिः

३ स्व-विकार परित्यज्य वस्तुमात्रतया स्थितः
मनसः सोत्तमा शान्तिर् ब्रह्मनिर्वाण-लक्षणा

४ प्रत्यक्-प्रत्यय-सतान-प्रवाह-करणं धियः
यदेषा मध्यमा शान्तिः शुद्धसत्त्वैकलक्षणा

५ विषय-व्यापृतिं त्यक्त्वा श्रवणैकमनःस्थितिः
मनसश् चेतरा शान्तिर् मिश्रसत्त्वैकलक्षणा

६ प्राच्योदीच्यांग-सद्भावे शमः सिध्यति नान्यथा
तीव्रा विरक्तिः प्राच्यांग उदीच्यांग दमादयः

७ कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मोहश्च मत्सरः
न जिताः षड् इमे येन तस्य शान्तिर् न सिध्यति

८ शब्दादि-विषयेभ्यो या विषवन् न निवर्तते
तीव्र-मोक्षेच्छया मिसोम् तस्य शान्तिर् न सिध्यति

९ येन नाराधितो देवो यस्य नो गुर्वनुग्रहः
न वश्य हृदय यस्य तस्य शान्तिर् न सिध्यति

१० मनःप्रसाद-सिद्ध्यर्थ साधन श्रूयतां बुधैः
मनःप्रसादो यत्-संस्थ यन्नाम न सिध्यति

११ ब्रह्मचर्यं अहिंसा च दया भूतेष्ववक्रता
विषयेष्वतिवैतृष्ण्यं शौच दम-विवर्जनम्

१२ सत्यं निरममता स्थैर्यं अभिमान-विसर्जनम्
ईश्वर-ध्यानपरता ब्रह्मविद्भि' सहस्थिति'

१३ ज्ञानशास्त्रैकपरता समता सुख-दु'खयो'
मानानासक्ति रेकांत-शीलता च मुमुक्षुता

१४ यस्यैतद् विद्यते सर्वं तस्य चित्तं प्रसीदति
न त्वेतद् धर्म-शून्यस्य प्रकारांतर-कोटिभि'

२ दम

१ ब्रह्मचर्यादिभिर् धर्मर् बुद्धेर् दोष-निवृत्तये
दवनं दम इत्याहुर् दम-शब्दार्थ-कोविदा'

२ तत्तद्-वृत्ति-निरोधेन बाह्येन्द्रिय-विनिग्रहः
योगिनां दम इत्याहुर मनस शांति-साधनम्

३ इन्द्रिये-ष्विन्द्रियार्थेषु प्रवृत्तषु यदृच्छया
अनुधावति तान्येव मनो वायु मिवानल'

४ इन्द्रियेषु निरुद्धेषु त्यक्त्वा वेग मन' स्वयम्
सत्त्वभाव उपादत्ते प्रसादम् तेन जायते

५ मनःप्रसादस्य निदानमेव, निग्रहणं यत् सकलेन्द्रियाणाम्
बाह्येन्द्रिये साधु निरुध्यमाने, बाह्यार्थभोगो मनसो वियुज्यते

६ तेन स्वदौष्ट्यं परिमुच्य चित्तं, शनैः शनैः शान्तिमुपाददाति
चित्तस्य बाह्यार्थ-विमार्गमेव, मार्गं विदुर् माधव-लक्षणज्ञाः

७ श्रम विना साधुमनःप्रसाद,-स्तु न विभ्रम सुकरं मुमुक्षोः
दमेन चित्तं निज-दोषजातं, विसृज्य शान्तिं समुपैति शीघ्रम्

८ सर्वेन्द्रियाणां गति-निग्रहेण, भोग्येषु दोषावसमर्शनेन
ईशप्रसादात् च गुरोः प्रसादात्,शान्तिं समायात्यचिरेण चित्तम्

३ तितिक्षा

१ आध्यात्मिकादि यद् दुःख प्राप्तं प्रारब्ध-वेगत
अचिन्तया तत्-सहन तितिक्षेति निगद्यते

२ रक्षा तितिक्षा-सदृशी मुमुक्षोः
न विद्यते क्वापि पवित्रा न भिन्नत
ययैव धीराः कवचीव विघ्नान्
सर्वान् तृणीकृत्य जयन्ति मायाम्

३ क्षमावतामेव हि योग-सिद्धिः
स्वाराज्यलक्ष्मी-सुखभोग-सिद्धिः
क्षमा-विहीना निपतन्ति विघ्नैः
वातेन रुग्णाः पर्ण-चयाः इव द्रुमात्

४ तितिक्षया तपो दानं यज्ञम् तीर्थं व्रतं श्रुतम्
भूति' स्वर्गो ऽपवर्गश्च प्राप्यते तत्तदर्थिभिः

५ ब्रह्मचर्यं अहिंसा च साधूनां अप्यगर्हणम्
पराक्षेपादि-सहनं तितिक्षोरेव सिध्यति

६ तस्मात् मुमुक्षा सधिका तितिक्षा, सपादनीये प्सितकार्य-सिद्धयै
तीव्रा मुमुक्षा च मह त्युपेक्षा, चोभे तितिक्षा-सहकारि कारणम्

७ तत्तत्काल-समागतामय-ततेः शान्त्यै प्रवृत्तो यदि
स्यात् तत्तत-परिहारकौषध-रतम् तच्चिंतने तत्पर'
तद्भिक्षु' श्रवणादि-धर्म-रहितो भूत्वा मृतश्चेत् ततः
किं सिद्ध' फल माप्नुयात् उभयथा भ्रष्टो भवेत् स्वार्थत'

८ योगं अभ्यसतो भिक्षार् योगात् चलित-चेतस'
प्राप्य पुण्य-कृतांल् लोकान् इत्यादि प्राह केशव'

९ न तु कृत्वैव सन्यासं तूष्णीमेव मृतस्य हि
पुण्यलोक-गतिं ब्रूते भगवान् न्यासमात्रत'

१० तस्मात् तितिक्षया सोढ्वा तत्तत्-दु'खं उपागतम्
कुर्यात शक्त्यनुरूपेण श्रवणादि शनैः शनैः

४ उपरतिः

१ साधनत्वेन दृष्टानां सर्वेषामपि कर्मणाम्
विधिना यः परित्यागः स संन्यासः सतां मतः

२ उपरमयति कर्माणीत्युपरति-शब्देन कथ्यते न्यासः
न्यासेन हि सर्वेषां श्रुत्या प्रोक्तो विकर्मणां त्यागः

३ उत्पाद्य आप्य संस्कार्यं विकार्यं परिगण्यते
चतुर्विधं कर्म-साध्यं फलं नान्यत् इतः परम्

४ नैतत् अन्यतरं ब्रह्म कदा भवितुमर्हति
स्वतःसिद्धं सदाप्तं शुद्धं निर्मलमक्रियम्

५ इत्यथ वस्तुनस् तत्त्वं श्रुतियुक्ति-व्यवस्थितम्
तस्मात् न कर्म-साध्यत्वं ब्रह्मणोऽस्ति कुतश्चन

६ प्रत्यग्ब्रह्म-विचारपूर्वमुभयोर् एकत्व-बोधाद् विना
कैवल्यं पुरुषस्य सिध्यति परब्रह्मात्मता-लक्षणम्
न स्नानैरपि कीर्तनैरपि जपैर् ना कृच्छ्र-चान्द्रायणैर्
ना वाप्यध्वर-यज्ञ-दान-निगमैर् ना मन्त्र-तन्त्रैरपि

७ ज्ञानादेव तु कैवल्यं इति श्रुत्या निगद्यते
ज्ञानस्य मुक्ति-हेतुत्वं अन्य-व्यापारविपूर्वकम्

८ यथाप्रेम् तृणकूटस्य, तेजसस् तिमिरस्य च
सहयोगो न घटते तथैव ज्ञान-कर्मणो'

९ संन्यसेत् सुविरक्तः सन् इहामुत्रार्थतः सुखात्
अविरक्तस्य सन्यासो निष्फलो ऽप्याज्य-यागवत्

१० सन्यस्य तु यतिः कुर्यात् न पूर्वविषय-स्मृतिम्
तां तां, तत्-स्मरणे तस्य जुगुप्सा जायते यत'

५ श्रद्धा

१ गुरु-वेदांत-वाक्येषु बुद्धिर् या निश्चयात्मिका
सत्यं इत्येव सा श्रद्धा निदानं मुक्ति-सिद्धये

२ श्रद्धावतां एव सतां पुमर्थ'
समीरितः सिध्यति नेतरेषाम
उक्त सुसूक्ष्म परमार्थ-तत्त्व
श्रद्धत्स्व सोम्येति च वक्ति वेदः

३ श्रद्धा-विहीनस्य तु न प्रवृत्तिः
प्रवृत्ति-शून्यस्य न साध्य-सिद्धिः
अश्रद्धयैवा भिहताश्च सर्वे
मज्जन्ति संसार-महासमुद्र

४ अस्तीत्येवोपलब्धस्य वस्तु-सद्भाव-निश्चयात्
सद्भाव-निश्चयस् तत्र श्रद्धया शास्त्र-सिद्धया

५ तस्मात् श्रद्धा सुसम्पाद्या गुरु-वेदांत-वाक्ययोः
मुमुक्षोः श्रद्दधानस्य फल सिध्यति नान्यथा

६ समाधानम्

१ श्रुत्युक्तार्थावगाहाय विदुषा ज्ञेय-वस्तुनि
चित्तस्य सम्यग् आधान समाधान इतीर्यते

२ चित्तस्य साध्यैकपरत्वमेव
पुमर्थ-सिद्धेर् नियमेन कारणम्
नैवान्यथा सिध्यति साध्य-मीषद्
मनःप्रमादे विफलः प्रयत्नः

३ चित्तं च दृष्टिं करणं तथान्यत्
एकत्र बध्नाति हि लक्ष्य-भेत्ता
किंचित् प्रमादे सति लक्ष्य-भेत्तुर्
बाण-प्रयोगो विफलो यथा तथा

४* सिद्धम् चित्त-समाधान असाधारण-कारणम्
यतस् ततो मुमुक्षूणां भवितव्य सदा बुधा

५ अत्यन्त-तीव्र-वैराग्यं फल-सिध्या महत्तरा

५ मुमुक्षुत्वम्

१ ब्रह्मात्मैकत्व-विज्ञानात् यद् विद्वान् मोक्तु मिच्छति
संसार-पाशबंधं तत् मुमुक्षुत्वं निगद्यते

२ साधनानां तु सर्वेषां मुमुक्षा मूल-कारणम्
अनिच्छोरप्रवृत्तस्य क्व श्रुतिः क्व नु तत्-फलम्

३ तीव्र-मध्यम-मंदातिमंद-भेदात् चतुर् विधा
मुमुक्षा तत्-प्रकारोऽपि कीर्त्यते श्रूयतां बुधैः

४ तापैस् त्रिभिर् नित्य मनेकरूपैः
संतप्यमाना क्षुभितांतरात्मा
परिग्रहं सर्व मनर्थ-बुद्ध्या
जहाति सा तीव्रतरा मुमुक्षा

५ ताप-त्रयं तीव्र मवेक्ष्य वस्तु
दृष्ट्वा कलत्रं तनयान् विहातुम्
मध्ये द्वयोर् लाडन मात्मनो यत्
सैषा मता माध्यमिकी मुमुक्षा

६ मोक्षस्य कालोऽस्ति किमद्य मे त्वरा
भुक्त्वैव भोगान् कृत-सर्वकार्यः
मुक्त्यै यतिष्ये ऽहमथेति बुद्धिर्
एषैव मंदा कथिता मुमुक्षा

७ मार्गे प्रयातुर् मणि-लाभवत् मे
लभेत मोक्षो यदि तर्हि धन्यः
इत्याशया मूढ-धियां मतिर् या
सैषा ऽतिमन्दा ऽभिमता मुमुक्षा

८ जन्मान्तर-सहस्रेषु तपसा ऽऽराधितेश्वरः
तेन निःशेष-निर्धूत-हृदयस्थित-कल्मषः

९ शास्त्रविद् गुणदोषज्ञो भोग्यमात्रे विनिःस्पृहः
नित्यानित्य-पदार्थज्ञो मुक्ति-कामो दृढ-व्रतः

१० निष्प्त अग्निना पात्र उत्त्रास्य त्वरया यथा
जहाति गेहं तद्वच्च तीव्रमोक्षेच्छया द्विजः

११ स एव सद्यस् तरति संसृतिं गुर्वनुग्रहात्
यस् तु तीव्र मुमुक्षुः स्यात् स जीवन्नेव मुच्यते

१२ जन्मान्तरे मध्यमस् तु तदन्यस् तु युगान्तरे
चतुर्थः कल्प-कोट्यां वा नैव बन्धात् विमुच्यते

१३ स्वादते मांस नित्यं शुनकः सूकरः खरः
तेषां एषां विशेषः को शुचिर् येषां तु ते समाः

१४ यावन् नाश्रयते रोगो यावन् नाक्रमते जरा
यावन् न धीर् विपर्येति यावन् मृत्युं न पश्यति

१५ तावदेव नर स्वस्थ सारग्रहण-तत्पर
विवेकी प्रयतेताशु भवबन्ध-विमुक्तये

१६ देवर्षि-पितृ-मर्त्यर्ण-बन्धमुक्तास्तु कोटिश
भवबन्ध-विमुक्तस्तु य कश्चिद् ब्रह्मवित्तम:

१७ अन्तर्बन्धेन बद्धस्य किं बहिर्बन्ध-मोचनै
तद् अन्तर्बन्ध मुक्त्यर्थं क्रियतां कृतिभि कृति

१८ कृति-पर्यवसानैव मता तीव्र-मुमुक्षुता
अन्या तु रसनामात्रा यत्र नो दृश्यते कृति

१९ शिरो विवेकस् तत्त्वत वैराग्य वपु रुच्यते
शमादय पद् अगानि मोक्षेच्छा प्राण इष्यते

२० ईदृग्धर्म-समायुक्तो जिज्ञासुर् युक्ति-कोविद
शूरो मृत्यु निहन्त्येव सम्यग्ज्ञानासिना ध्रुवम्

— ➤ —

भक्ति-मार्गः

प्रकरणानि

I वैष्णवी भक्ति

स्तोत्राणि	श्लोक-संख्या
१ षट्पदी	७
२ अच्युताष्टकम्	८
३ कृष्णाष्टकम्	९
४ गोविंद-पंचकम	५
५ भजे पांडुरंगम्	६
भक्ति-विचार	
६ भक्ति-तत्त्वम्	१४
७ सगुण-निर्गुणम्	१०
मंत्र	
८ मिश्राक्षर-मंत्र	१

II शैवी उपासना

९ मह शोकमीडे	७
१ अपराध-क्षमापनम्	१

III मातृ-वंदनम्

११ क्वचिदपि कुमाता न भवति	६
१२ आनन्द-लहरी	८
१३ माता अन्नपूर्णा	६
१४ गंगा स्तव	४
१५ नमदाष्टकम्	८
	१ ०

I वैष्णवी भक्ति — स्तोत्राणि

१ षट्-पदी

१ अविनय-मपनय विष्णो दमय मनः शमय विषय-मृगतृष्णाम्
भूत-दयां विस्तारय तारय संसार-सागरतः

२ दिव्यधुनी-मकरंदे परिमलपरिभोग-सच्चिदानंदे
श्रीपति-पदारविंदे भवभय-खेदच्छिदे वंदे

३ सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस् त्वम्
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः

४ उद्धृत-नग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशि-दृष्टे
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भव-तिरस्कारः

५ मत्स्यादिभि-रवतारैर् अवतारवता-वता सदा वसुधाम्
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवताप भीतो ऽहम्

६ दामोदर गुण-मंदिर सुंदर-वदनारविंद गोविंद
भवजलधि-मथनमंदर परमं दर-मपनय त्वं मे

* * *

७ नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ
इति षट्पदी मदीये वदन-सरोजे सदा वसतु

[षट्-पदी]

२ अच्युताष्टकम्

१ अच्युतं केशवं राम-नारायणं
कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम्
श्री-धरं मा-धवं गोपिका-वल्लभं
जानकी-नायकं रामचंद्रं भजे

२ अच्युतं केशवं सत्यभामा-धवं
माधवं श्रीधरं राधिका-राधितं
इंदिरा-मंदिरं चेतसा सुंदरं
देवकी-नंदनं नंद-जं संदधे

३ विष्णवे जिष्णवे शंखिने चक्रिणे
रुक्मिणी-रागिणे जानकी-जानये
वल्लवी-वल्लभाया-र्चिताया-त्मने
कंस-विध्वंसिने वंशिने ते नमः

४ कृष्ण गोविंद हे राम नारायण
श्री-पते वासुदेवा-जित श्री-निधे
अच्युतानंत हे माधवा-धोक्षज
द्वारका-नायक द्रौपदी-रक्षक

५ राक्षस-क्षोभितः सीतया शोभितो
दण्डकारण्यभू-पुण्यताकारणः
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो
ऽगस्त्य-सम्पूजितो राघवः पातु माम्

६ धेनुकारिष्टको ऽनिष्टकृद् द्वेषिणां
केशि-हा कंस-हृद् वंशिका-वादकः
पूतना-कोपकः सूरजा-खेलनो
बाल-गोपालकः पातु मां सर्वदा

७ विद्युदुद्योतवान् प्रस्फुरद्वाससं
प्रावृडम्भोदवत् प्रोल्लसद्-विग्रहम्
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं
लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे

८ कुञ्चितैः कुन्तलैर् भ्राजमानाननं
रत्न-मौलिं लसत्-कुण्डलं गण्डयोः
हार-केयूरकं कङ्कण-प्रोज्ज्वलं
किङ्किणी-मञ्जुलं श्यामलं तं भजे

[अच्युताष्टकम्]

३ कृष्णाष्टकम्

१ श्रिया-श्लिष्टो विष्णुः स्थिरचर-वपुर् वेद-विषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरि-रसुर-हंता-ब्ज-नयनः
गदी शंखी चक्री विमल-वनमाली स्थिर-रुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

२ यतः सर्वं जातं वियदनिल-मुख्यं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं यो ऽवति निज-सुखांशेन मधु-हा
लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस् तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

३ असून् आयम्यादौ यम-नियम-मुख्यैः सु-करणैर्
निरुध्येदं चित्तं हृदि विलय-मानीय सकलम्
य-मीड्यं पश्यन्ति प्रवर-मतयो मायिन-मसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

४ पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
य-मित्यादौ वेदो वदति जगतां ईश-ममलम्
नियन्तारं ध्येयं मुनि-सुर-नृणां मोक्षद-मसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

५ महेंद्रादिर् देवो जयति दितिजान् यस्य बलतो
न कस्य स्वातंत्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्-कृति-मृते
कवित्वादेर् गर्वं परिहरति यो ऽसौ विजयिनः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

६ विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकर मुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृति भयं याति जनता
विना यस्य स्मृत्या कृमिशत-जनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

७ नरातंकोत्तंकः शरण-शरणो भ्रांति-हरणो
घनश्यामो वामो व्रजशिशु-वयस्यो ऽर्जुन-सखः
स्वयम्भूर् भूतानां जनक उचिताचार-सुखदः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

८ यदा धर्म-ग्लानिर् भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटित-वपुः सेतुधृग् अजः
सतां धाता स्वच्छो निगमगण-गीतो व्रज-पतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

९ इति हरि रखिलात्मा राधितः शंकरेण
श्रुतिविशद-गुणो ऽसौ मातृ-मोक्षार्थ माद्यः
यतिवर-निकटे श्री-युक्त आविर्बभूव
स्वगुण-वृत उदारः शंखचक्राब्ज-हस्तः

[कृष्णाष्टकम्]

४ गोविंद-पंचकम्

१ सत्यं ज्ञान मनंतं नित्य मनाकाश परमाकाशं
गोष्ठप्रांगण-रिंगणलोल मनायासं परमायासम्
मायाकल्पित-नानाकार मनाकारं भुवनाकारम्
क्ष्मा-मा-नाथ मनाथं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

२ त्रैविष्टप-रिपुवीर-घ्नं क्षितिभार घ्नं भवरोग-घ्नं
कैवल्यं नवनीताहार मनाहारं भुवनाहारम्
वैमल्यस्फुट-चेतोवृत्ति-विशेषाभास मनाभासं
शैवं केवल-शांतं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

३ गो-पालं भूलीलाविग्रह-गोपालं कुल-गोपालं
गोपीखेलन-गोवर्धनधृति-लीलालालित-गोपालम्
गोभिर् निगदित-गोविंदस्फुट-नामानं बहु-नामानं
गोपी-गोचरदूरं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

४ कांत कारण-कारण मादि मनादि काल मनाभासं
कालिंदीगत-कालियशिरसि मुहुर् नृत्यन्तं सुनृत्यतम्
कालं काल-कलातीत कलिताशेषं कलिदोष-घ्नम्
कालत्रय-गति-हेतुं प्रणमत गोविंद परमानदम्

५ वृंदावन-भुवि वृंदारकगण-वृंदा-राधित वन्दे ऽहम्
कुंदाभामल-मंदस्मेर-सुधानद सुहृदानदम्
वंद्याशेष-महामुनिमानस-वंद्यानद-पदद्वंद्वम्
वंद्याशेष-गुणाब्धि प्रणमत गोविंदं परमानदम्

[गोविन्दाष्टकम्]

५ भजे पांडुरगम्

१ महायोग-पीठे तटे भीमरथ्यां, वरं पुंडरीकाय दातु मुनींद्रैः
समागत्य तिष्ठन्त मानदकन्द, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

२ तडिद्-वाससं नीलमघावभासं, रमा-मंदिर सुदरं चित्-प्रकाशम्
वर त्विष्टिकायां समन्‍न्यस्त-पादं, परब्रह्म-लिंग भजे पांडुरगम्

३ प्रमाणं भवाब्धे रिदं मामकानां,नितंब: कराभ्यां धृता येन तस्मात्
विधातुर् वसत्यै धृता नाभिकोश , परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

४ शरच्चन्द्रबिंबानन चारुहासं, लसत्कुंडल-क्रांतगडस्थलांगम्
जपाराग-बिंबाधरं कंजनेत्र, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

५ विशुं वेणुनाद चरंतं दुरंतं, स्वयं लीलया गोपवेषं दधानम्
गवां वृन्दकानन्दन चारुहासं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

६ अजं रुक्मिणी-प्राणसंजीवनं तं, परं धाम कैवल्य मेकं तुरीयम्
प्रसन्नं प्रपन्नार्तिहं देवदेवं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

[पांडुरंगाष्टकम्]

६ भक्ति विचार — भक्ति-तत्त्वम्

१ द्वेधा भक्ति

१ चित्ते सत्त्वोत्पत्तौ तडिदिव बोधोदयो भवति
तर्ह्येव स स्थिरः स्यात् यदि चित्तं शुद्धि मुपयाति

२ शुध्यति हि नांतरात्मा कृष्णपदांभोजभक्ति मृते
वसनमिव क्षारोदैः भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः

३ स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्ति रुद्दिष्टा
प्रारंभे स्थूला स्यात् सूक्ष्मा तस्याः सकाशात्तु

२ स्थूला भक्ति

४ स्वाश्रम-धर्माचरणं कृष्णप्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम्
विविधोपचार-करणैः हरि-दासैः संगमः शश्वत्

५ कृष्णकथा-श्रवणे महोत्सवः सत्य-वादश् च
पर-युवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता

६ ग्राम्यकथासूद्वेगः सुतीर्थ-गमनेषु तात्पर्यम्
यदुपतिकथा-वियोगे व्यर्थं गतम् आयुर् इति चिन्ता

७ एवं कुर्वति भक्तिं कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना
समुदेति सूक्ष्म भक्तिर् यस्या हरिरंतरा विशति

३ सूक्ष्मा भक्तिः

८ स्मृति-सत्पुराण-वाक्यैर् यथाश्रुतायां हरेर् मूर्तौ
मानस-पूजाभ्यासो विजन-निवासोऽपि तात्पर्यम्

९ सत्य समस्त जन्तुषु कृष्णस्याऽवस्थितेर् ज्ञानम्
अद्रोहो भूतगणे ततस् तु भूतानुकम्पा स्यात्

१० प्रमित-यदृच्छा-लाभे सन्तुष्टिर्, दार-पुत्रादौ
ममता-शून्यत्वम् अतो निरहङ्कारत्वम् अक्रोधः

११ मृदु-भाषिता प्रसादो निज-निन्दायां स्तुतौ समता
सुख-दुःख-शीतलोष्ण-द्वन्द्व-सहिष्णुत्वम् आपदो न भयम्

१२ निद्राहारविहारेष्व् अनादरः संग-राहित्यम्
वचने च अनवकाशः कृष्ण-स्मरणेन शाश्वती शांतिः

१३ केनापि गीयमाने हरिगीते वेणुनादे वा
आनंदाविर्भावो युगपत् स्यात् हृदसात्त्विकोद्रेकः

१४ सर्वेषु भगवद्भाव भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः
एतादृशी दशा चेत् तदैव हरिदास-वर्यः स्यात

[प्रबोध-सुधाकर]

७ सगुण निर्गुणम्

१ भूतेष्वंतर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानंदः
प्रकृतेः परः परात्मा यदुकुल-तिलकः स एवायम्

२ ननु सगुणो दृश्य-तनुस् तथैकदेशाधिवासश् च
स कथं भवेत् परात्मा प्राकृतवत् रागरोष-युतः

३ इतरे दृश्य-पदार्था लक्ष्यन्ते ऽनेन चक्षुषा सर्वे
भगवान् अनया दृष्ट्या न लक्ष्यते ज्ञानदृग्-गम्यः

४ यद् विश्वरूपदर्शन-समये पार्थाय दत्तवान् भगवान्
दिव्यं चक्षुस्, तस्मात् अदृश्यता युज्यते नृ-हरौ

५ यद्यपि साक्षात्कृत्य तथैकदेशी विभाति यदुनाथः
सर्वगत सर्वात्मा तथाप्यय सच्चिदानंदः

II शैवी उपासना

:१: महः शैवमीडे

१ अनाद्यन्त माद्यं परं तत्त्व मर्थं
चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्
हरिब्रह्म-मृग्यं परब्रह्मरूपं
मनोवागतीतं महः शैवमीडे

२ शिवेशान-तत्पूरुषाघोर-वामा-
दिभिर् ब्रह्मभिर् हृन्मुखैः षड्भिरङ्गैः
अनौपम्य-षट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यां
अतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा

३ जगन्नाथ मन्नाथ गौरी-सनाथ
प्रपन्नानुकम्पिन् विपन्नार्ति-हारिन्
महःस्तोम मूर्ते समस्तैकबन्धो
नमस् ते नमस् ते पुनस् ते नमोऽस्तु

४ त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति
प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास् तु दैन्यम्
न चेत् ते भवेद् भक्तवात्सल्य-हानिस्
ततो मे दयालो दयां संनिधेहि

III मातृ-वदनम्

११ क्वचिदपि कुमाता न भवति

१ न मंत्र नो यंत्र तदपि च न जाने स्तुति-महो
न चाह्वान ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथा
न जाने मुद्राम् ते तदपि च न जाने विलपनम्
पर जाने मातम् त्वदनुसरणं क्लेश-हरणम्

२ विधे-रज्ञानेन द्रविण-विरहेणा-लसतया
विधेयाशक्यत्वात् तव चरणयो-र्या च्युति-रभूत्
तदेतत् क्षंतव्य जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

३ पृथिव्यां पुत्रास् ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरल-तरलोऽहं तव सुतः
मदीयोऽयं त्यागः समुचित-मिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

४ जगन्मात-र्मातस् तव चरण-सेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविण-मपि भूयस् तव मया
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

३ सपर्णां आकीर्णां कतिपय-गुणैः सादर मिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर् यत्परिवृतः
पुराणो ऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्य-पदवीम्

४ विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नाय जननी
त्व मर्थानां मूलं धनद-नमनीयांघ्रिकमले
त्व मादिः कामानां जननि कृत-कन्दर्पविजये
सतां मुक्तेर् बीजं त्वमसि परमब्रह्म-महिषी

५ प्रभूता भक्तिस् ते यदपि न ममालोल-मनसस्
त्वया तु श्रीमत्या सदय मवलोक्यो ऽह मधुना
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातक-मुखे
भृशं शंके कैर् वा विधिभि रनुनीता मम मतिः

६ कृपापांगालोकं वितर तरसा साधु-चरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरण-दीक्षा उपगते
न चेद् इष्टं दद्या दनुपद महो कल्प-लतिका
विशेषः सामान्यैः कथ मितरवल्ली-परिकरैः

७ अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेम-पदवीं
यथा रथ्या-पाथः शुचि भवति गंगौघ-मिलितम्
तथा तत्तत्पापै रतिमलिन मन्तर् मम यदि
त्वयि प्रेम्णा सक्तं कथमिव न जायेत विमलम्

८ त्वदन्यस्मात् इच्छाविषय-फल-लाभे न नियमस्
त्वमर्थानां इच्छाधिकमपि समर्था वितरणे
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास् त्वयि मनस्
त्वदासक्तं नक्तंदिवमुचितमीशानि कुरु तत्

[आनन्द-लहरी]

१३ माता अन्नपूर्णा

१ नित्यानंदकरी वराभयकरी सौंदर्य-रत्नाकरी
निर्धूताखिल-घोर-पावनकरी प्रत्यक्ष-माहेश्वरी।
प्रालेयाचल-वंश-पावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी

२ योगानंदकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी।
चन्द्रार्कानल भासमान-लहरी त्रैलोक्य-रक्षाकरी
सर्वैश्वर्य-समस्त-वांछितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी

३ कैलासाचल-कन्दरालयकरी गौरी उमा शंकरी
कौमारी निगमार्थ-गोचरकरी। ओंकारबीजाक्षरी
मोक्षद्वार-कपाट-पाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी

४ दृश्यादृश्य-प्रभूत-वाहनकरी ब्रह्मांड भांडोदरी
लीलानाटक-सूत्र भेदनकरी विज्ञानदीपांकुरी
श्रीविश्वेश-मनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी माता अन्नपूर्णेश्वरी

५ अन्नपूर्णे सदा-पूर्णे शंकर-प्राणवल्लभे
ज्ञानवैराग्य सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती

६ माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः
बांधवाः शिव भक्ताश्च च, स्वदेशो भुवन-त्रयम्

[अन्नपूर्णा-स्तोत्रम्]

१४ गंगा-चतुष्टयम्

१ ब्रह्मांडं खंडयंती हर-शिरसि जटावल्लि मुल्लासयंती
स्वर्लोकात् आपतंती कनकगिरि-गुहा-गंड-शैलात् स्खलंती
क्षोणी-पृष्ठे लुठंती दुरितचय-चमूर् निर्भरं भर्त्सयंती
पाथोधिं पूरयंती सुरनगर-सरित् पावनी नः पुनातु

२ आदौ आदि-पितामहस्य नियमव्यापार-पात्रे जलं
पश्चात् पन्नग-शायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्
भूयः शंभुजटा-विभूषणमणिर् जह्नोर् महर्षे रियं
कन्या कल्मष-नाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते

३ शैलेंद्रात् अवतारिणी निजजले मज्जन्-जनोत्तारिणी
पारावार-विहारिणी भवभयश्रेणी-समुत्सारिणी
शेषाहे रनुकारिणी हरशिरोवल्ली-दलाकारिणी
काशीप्रांत विहारिणी विजयते गंगा मनो-हारिणी
४ कुतो वीचिर् वीचिस् तव यदि गता लोचन-पथं
त्व मापीता पीतांबरपुर-निवास वितरसि
त्वदुत्संगे गंगे पतति यदि कायस् तनुभृतां
तदा मात' शातक्रतव-पद-लाभो ऽप्यतिलघु'

[गंगाष्टकम्]

१५ नर्मदाष्टकम्

१ सबिंदुसिंधुर-स्खलत्-तरंगभंग-रंजित
द्विषत्सुपापजात जातकारि-वारि-संयुतम्
कृतांतदूत-काल भूत भीति-हारि वर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे
२ त्वदंबुलीन-दीनमीन-दिव्यसंप्रदायकं
कलौ मलौघभार-हारि सर्वतीर्थ-नायकम्
सुमत्स्य-कच्छ-नक्र-चक्र-चक्रवाक-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे
३ महागभीर-नीरपूर-पाप धूत भूतलं
ध्वनत्-समस्त पातकारि दारितापदाचलम्
जगल्-लये महाभये मृकंडुसूनु-हर्म्य-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

४ गतं तदैव मे भय त्वदंबु वीक्षितं यदा
मृकंडुसूनु-शौनकासुरारि-सेवि सर्वदा
पुनर्भवाब्धि-जन्मजं भवाब्धि-दुःख-वर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे

५ अलक्षलक्ष-किन्नरामरासुरादि-पूजितम्
सुलक्षनीरतीर-धीरपक्षिलक्ष-कूजितम्
वसिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलादि-कर्दमादि-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे

६ सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपात्रि-षट्पदैर्
धृत स्वकीय-मानसेषु नारदादि-षट्पदैः
रवींदु-रंतिदेव-देवराज-कर्म-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे

७ अलक्ष-लक्षलक्षपाप-लक्षसारसायुधं
ततस्तु जीवजंतुतंतु-भुक्तिमुक्ति-दायकम्
विरंचि-विष्णु-शंकर-स्वकीयधाम-वर्म-द
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे

८ अहो मृतं स्वनं श्रुतं महेश-केशजा-तटे
किरात-सूत-वाडवेषु पंडिते शठे नटे
दुरंत-पापताप-हारि सर्वजंतु-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे

[नर्मदाष्टकम्]

वेदान्त-पाठ

प्रकरणानि

१	प्रातःस्मरणम	३
२	हरिमीडे	१२
३	दक्षिणामूर्ति	८
४	मनीषा-पञ्चकम्	५
५	ते धन्या	७
६	कौपीन भाग्यम	३
७	शिवोऽहं शिवोऽहम्	६
८	शिव केवलोऽहम्	६
९	प्रत्यगेवाहमस्मि	५
१०	तदेवाहमस्मि	८
११	स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा	१०
१२	शुद्ध बुद्धं तत्त्व मसि त्वम	३
१३	ब्रह्म तत त्वमसि भावयात्मनि	१
१४	उपदेश-पञ्चकम्	५
१५	परा पूजा	६
		१०

१ प्रात-स्मरणम्

१ प्रात' स्मरामि हृदि सस्फुर दात्म-तत्त्व
सच्चित्सुख परमहंस-गतिं तुरीयम्
यत् स्वप्न जागर-सुषुप्त मवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कल महं, न च भूत सघ'

२ प्रातर् भजामि मनसो वचसां अगम्यम्
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यत् नेति नेति वचनैर् निगमा अवोचुम्
त देवदेव मज मच्युत माहु रग्र्यम्

३ प्रातर् भजामि तमस' पर मर्क-वर्ण
पूर्ण सनातन-पद पुरुषोत्तमाख्यम्
यस्मिन् इद जग दशेष मशेष-मूर्तौ
रज्ज्वां भुजगम इव प्रतिभासित वै

[प्रात-स्मरणम्]

: २ हरि मीडे

१ स्तोष्ये भक्त्या विष्णु मनादिं जगदादिं
यस्मिन् एतत् संसृति-चक्रं भ्रमतीत्थम्
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत् संसृति-चक्रं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

१२ सत्तामात्र केवल-विज्ञान मज सत्
यस्मै "तत् त्व मसी"-त्यात्म-सुताय
साम्नां अंते प्राह पिता यं विभु मार्धे
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि-मीडे

[हरि-मीडे]

३ दक्षिणामूर्ति

१ विश्वं दर्पण-दृश्यमान-नगरी-तुल्यं निजान्तर् गतं
पश्यन् आत्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया
यः साक्षात्कुरुते प्रबोध-समये स्वात्मान मेवा द्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

२ बीजस्या न्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्-निर्विकल्प पुनर्
मायाकल्पित-देशकालकलनावैचित्र्य-चित्रीकृतम्
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

३ यस्यैव स्फुरण सदा त्मक मसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात् 'तत् त्व मसी'ति वेद-वचसा यो बोधय त्याश्रितान्
यत्साक्षात्करणाद् भवेत् न पुनरावृत्तिर् भवांभोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

४ नानाछिद्रघटोदरस्थित-महादीप-प्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादि-करण-द्वारा बहिः स्पन्दते
जानामीति तमेव भान्त मनुभात्येतत् समस्त जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

५ राहुग्रस्त-दिवाकरेन्दु-सदृशो माया-समाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो यो ऽभूत् सुषुप्तः पुमान्
प्राग् अस्वाप्स मिति प्रबोध-समये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

६ बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वा स्ववस्था स्वपि
व्यावृत्ता स्वनुवर्तमान महमि त्यन्तः स्फुरन्त सदा
स्वात्मान प्रकटीकरोति भजतां यो भद्रया मुद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये

७ विश्व पश्यति कार्य-कारणतया स्व-स्वामि-संबंधत
शिष्याचार्यतया तथैव पितृ-पुत्राद्यात्मना भेदतः
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो माया-परिभ्रामितस्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

८ भू रंभां सनलो ऽनिलो ऽम्बर महर्नाथो हिमांशुः पुमान्
इत्याभाति चराचरात्मक मिद यस्यैव मूर्त्यष्टकम्
नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद् विभोस्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

[दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रम्]

४ः मनीषा-पञ्चकम्

१ जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादि-पिपीलिकान्त-तनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चेत्
चाण्डालो ऽस्तु स तु द्विजो ऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

२ ब्रह्मैवाह-मिदं जगच्च सकलं चिन्मात्र-विस्तारितं
सर्वं चैत-दविद्यया त्रिगुणया ऽशेषं मया कल्पितम्
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालो ऽस्तु स तु द्विजो ऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

३ शश्वत् नश्वर-मेव विश्व-मखिलं निश्चित्य वाचा गुरोर्
नित्यं ब्रह्म निरंतरं विमृशता निर्व्याज-शान्तात्मना
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपु-रित्येषा मनीषा मम

४ या तिर्यङ्-नर-देवताभि-रहमि-त्यंतः स्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्ष-देह-विषया भान्ति स्वतो ऽचेतना
तां भास्यैः पिहितार्क-मण्डल-निभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
योगी निर्वृत-मानसो हि गुरु-रित्येषा मनीषा मम

५ यत्सौख्याम्बुधि-लेश-लेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यत् चित्ते नितरां प्रशान्त-कलने लब्ध्वा मुनिर् निर्वृतः
यस्मिन् नित्य-सुखाम्बुधौ गलित धीर् ब्रह्मैव न ब्रह्म-विद्
य: कश्चित् स सुरेंद्र-वंदितपदो नून मनीषा मम

[मनीषा-पंचकम्]

५ ते धन्या

१ तत् ज्ञानं, प्रशमकर यदिंद्रियाणां
तत् ज्ञेय, यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्
ते धन्या, भुवि परमार्थ-निश्चितेहा:
शेपास्तु भ्रम-निलये परिभ्रमन्त:

२ आदौ विजित्य विषयान् मद-मोह-राग
द्वेषादि-शत्रुगण माहृत-योगराज्या:
ज्ञात्वा मतं समनुभूय परात्म-विद्या
कान्ता-सुख वनगृहे विचरन्ति धन्या:

३ त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकर पद द्वे
मानावमान-सदृशा: सम-दर्शिनश्च
कर्तारमन्य मवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्म-परिपाक-फलानि धन्या:

४ त्यक्त्वैषणात्रय मवेक्षित-मोक्षमार्गा
भैक्षामृतेन परिकल्पित-देहयात्रा
ज्योतिः परात्परतरं परमात्म-संज्ञं
धन्या द्विजा रहसि हृद्य वलोकयन्ति

५ नासन् न सन् न सदसन् न महन् न चाणु
न स्त्री पुमान् न च नपुंसक मेकबीजं
यैर् ब्रह्म तत् समनुपासित मेकचित्तैर्
धन्या विरेजु रितरे भवपाश-बद्धाः

६ अज्ञानपङ्क-परिमग्न मपेत-सारं
दुःखालय मरण-जन्म-जरावसक्तम्
संसार-बंधन मनित्य मवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति

७ शान्तै रनन्य-मतिभि र्मधुर-स्वभावैर्
एकत्व-निश्चितमनोभि रपेत-मोहैः
साकं वनेषु विदितात्मपद-स्वरूप
तद्वस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः

[धन्याष्टकम्]

६ कौपीन भाग्यम्

१ वेदान्त-वाक्येषु सदा रमन्त', भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः
विशोकमंतःकरणे रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

२ देहादि-भाव परिवर्जयन्त', आत्मान मात्मन्यवलोकयन्तः
नान्तं न मध्यं न बहि' स्मरन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

३ स्वानन्द-भावे परितुष्टिमन्तः, सशांतसर्वेन्द्रिय-तुष्टिमन्तः
अहर्निश ब्रह्मणि ये रमन्त, कौपीनवन्त' खलु भाग्यवन्तः

[कौपीन-पंचकम्]

७ शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

१ मनो-बुद्ध्यहंकार-चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र जिह्व न च घ्राण-नेत्रे
न च व्योम भूमिर् न तेजा न वायुम्
चिदानदरूप' शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

२ न च प्राणसंज्ञा न पंचानिला मे
न वा सप्तधातुर् न वा पंचकोश'
न वाक् पाणिपादौ न चापस्थ-पायू
चिदानंदरूप शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

३ न मे द्वेष-रागौ न मे लोभ-मोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्
चिदानदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

४ न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

५ न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म
न बन्धुर् न मित्रं गुरुर् नैव शिष्यश्
चिदानदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

६ अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर् व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि
सदा मे समत्वं न मुक्तिर् न बंधश्
चिदानदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

[आत्म-षट्कम्]

८ शिव केवलो ऽहम्

१ न भूमिर् न तोयं न तेजो न वायुर्
न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

२ न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर् न बाह्यम्
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वा परा दिक्
वियद्व्यापकत्वात् अखण्डैकरूपस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

३ न शुक्ल न कृष्ण न रक्त न पीतं
न कुब्जं न पीन न ह्रस्वं न दीर्घम्
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

४ न शास्ता न शास्त्र न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

५ न जाग्रत् न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्
न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

६ अपि व्यापकत्वात् हि तत्त्वप्रयोगात्
स्वतःसिद्धभावात् अनन्याश्रयत्वात्
जगत् तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

[दश-श्लोकी]

ः९ प्रत्यगेवाहमस्मि

१ नाहं देहो नाप्यसुर् नाक्षवर्गो
नाहंकारो नो मनो नापि बुद्धिः
अंतस् तेषां चापि तद्-विक्रियाणां
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

२ वाचः साक्षी प्राण-वृत्तेश्च साक्षी
बुद्धेः साक्षी बुद्धि-वृत्तेश्च साक्षी
चक्षुः श्रोत्रादींद्रियाणां च साक्षी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

३ नास्म्यागता नापि गंता न हंता
नाहं कर्ता न प्रयोक्ता न वक्ता
नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

४ नाहं योगी नो वियोगी न रागी
नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी
नाहं बद्धो नापि युक्तो न मुक्तः
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

५ नांतःप्रज्ञो ना बहिःप्रज्ञको वा
नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः
नाहं श्रोता नापि मंता न बोद्धा
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि

[सर्ववेदांत-सिद्धांत-सार-संग्रह]

१० तदेवाहमस्मि

१ तपो-यज्ञ-दानादिभिः शुद्ध-बुद्धिर्
विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छ-बुद्ध्या
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि

२ दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं
समाराध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपम्
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि

३ यदानन्दरूपं प्रकाश-स्वरूपं
निरस्त-प्रपंचं परिच्छेद-शून्यम्
अहं ब्रह्मवृत्त्येक-गम्यं तुरीयं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि

४ यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं
विनष्टं च सद्यो यदात्म-प्रबोधे
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि

५ निषेधे कृते नेति-नेतीति वाक्यै
समाधि-स्थितानां यदाभाति पूर्णम्
अवस्थात्रयातीत मद्वैत मेकं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

६ यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं
यदाभाति सत्त्वे सदाभाति सर्वम्
यदालोचिते हेय मन्यत् समस्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

७ अनंतं विभुं सर्वयोनिं निरीहं
शिवं सङ्ग-हीनं यदोंकार-गम्यम्
निराकार मत्युज्ज्वलं मृत्यु-हीनं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

८ यदानन्द-सिन्धौ निमग्नः पुमान् स्यात्
अविद्या-विलासः समस्त-प्रपंचः
तदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

[विज्ञान-नौका]

: १२ तत्त्व मसि त्वम्

१ ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय-विहीनं
ज्ञातु रभिन्नं ज्ञान मखंडम्
ज्ञेयाज्ञेयत्वादि-विमुक्तं
शुद्धं बुद्धं तत्त्व मसि त्वम्

२ अंतःप्रज्ञत्वादि-विकल्पैर्
अस्पृष्टं यत् तत् शिवमात्रम्
सत्तामात्रं समरस मेकं
शुद्धं बुद्धं तत्त्व मसि त्वम्

३ सर्वाकारं सर्व मसर्वं
सर्वनिषेधावधिभूतं यत्
सत्यं शाश्वत मेक मनंतं
शुद्धं बुद्धं तत्त्व मसि त्वम्

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रह]

११३ यद् ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

१ जाति-नीति-कुल-गोत्र-दूरग, नाम-रूप-गुण-दोष-वर्जितम्
देश-काल-विषयातिवर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

२ यत् परं सकलवागगोचरं, गोचर विमलबोध-चक्षुषः
शुद्धचिद्घन मनादि वस्तु यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

३ षड्भि रूर्मिभि रयोगि योगिहृद्,-भावित न करणैर् विभावितम्
बुद्ध्यवद्य मनवद्यमूर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

४ भ्रांतिकल्पित जगत्कलाश्रय, स्वाश्रयं च सदसद्विलक्षणम्
निष्कलं निरुपमान मृद्धिमद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

५ जन्म-वृद्धि-परिणत्यपक्षय,-व्याधि-नाशन-विहीन मव्ययम्
विश्व-सृष्ट्यवन-घात-कारणं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

६ अस्तभेद मनपास्त-लक्षण, निस्तरंग-जलराशि निश्चलम्
नित्यमुक्त मविभक्तमूर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

७ एकमेव सद नेक-कारणं कारणांतर-निरासकारणम्
कार्यकारण-विलक्षणं स्वयं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

८ निर्विकल्पक मनल्प मक्षर, यत् क्षराक्षर-विलक्षण परम्
नित्य मव्ययसुखं निरंजन, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

११ हस्तामलक

१ कस्त् त्वं शिशो, कस्य, कुतो ऽसि गन्ता,
किं नाम ते, त्वं कुत आगतो ऽसि ?
एतत् मयोक्तं वद चार्भक त्वं
मत्प्रीतये प्रीति-विवर्धनो ऽसि

२ नाहं मनुष्यो न च देव-यक्षौ
न ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो
भिक्षुर् न चाहं निजबोधरूपः

३ निमित्तं मनश् चक्षुरादि-प्रवृत्तौ
निरस्ताखिलोपाधि राकाश-कल्पः
रविर् लोकचेष्टा निमित्तं यथा यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

४ यमग्न्युष्णवत् नित्यबोधस्वरूपं
मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि
प्रवर्तन्त आश्रित्य निष्कम्पमेकं
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

५ मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो
मुखत्वात् पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु
चिदाभासको धीषु जीवो ऽपि तद्वत्
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

१३ यद् ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

१ जाति-नीति-कुल-गोत्र-दूरगं, नाम-रूप-गुण-दोष-वर्जितम्
देश-काल-विषयातिवर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

२ यत् परं सकलवागगोचरं, गोचरं विमलबोध-चक्षुषः
शुद्धचिद्घन मनादि वस्तु यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

३ षड्भि रूर्मिभि रयोगि योगिहृद्, भावितं न करणैर् विभावितम्
बुद्ध्यवद्य मनवद्यभूति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

४ भ्रांतिकल्पित-जगत्कलाश्रयं, स्वाश्रयं च सदसद्विलक्षणम्
निष्कलं निरुपमान मृद्धिमद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

५ जन्म-वृद्धि-परिणत्यपक्षय,-व्याधि-नाशन-विहीन मव्ययम्
विश्व-सृष्ट्यवन-घात-कारणं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

६ अस्तभेद मनपास्त-लक्षणं, निस्तरंग-जलराशि-निश्चलम्
नित्यमुक्त मविभक्तमूर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

७ एकमेव सद नेक-कारणं कारणांतर-निरासकारणम्
कार्यकारण-विलक्षणं स्वयं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

८ निर्विकल्पक मनल्प मक्षरं, यत् क्षराक्षर-विलक्षणं परम्
नित्य मव्ययसुखं निरंजनं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

ः१२ तत्त्व मसि त्वम्

१ ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय-विहीनं
ज्ञातुरभिन्न ज्ञान मखण्डम्
ज्ञेयाज्ञयत्वादि-विमुक्तं
शुद्ध बुद्ध तत्त्व मसि त्वम्

२ अंतःप्रज्ञत्वादि-विकल्पैर्
अस्पृष्ट यत् तत् शिवमात्रम्
सत्तामात्र समरस मेकं
शुद्ध बुद्ध तत्त्व मसि त्वम्

३ सर्वाकार सर्व समत्र
सर्वनिषेधावधिभूत यत्
सत्य शाश्वत मेक मनन्त
शुद्ध बुद्ध तत्त्व मसि त्वम्

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

४ क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यतां
औदासीन्य-मभीप्स्यतां जन-कृपानैष्ठुर्य-मुत्सृज्यताम्

५ एकान्ते सुख-मास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चिति-बलात् नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतां अथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्

[उपदेश-पञ्चकम्]

:१५: परा पूजा

१ अखंडे सच्चिदानंदे निर्विकल्पैकरूपिणि
स्थिते ऽद्वितीयभावे ऽस्मिन् कथं पूजा विधीयते

२ पूर्णस्या-वाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्
स्वच्छस्य पाद्य-मर्घ्यं च शुद्धस्या-चमनं कुतः

३ निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस् तस्यो-पवीतकम्

४ निर्लेपस्य कुतो गंधः पुष्पं निर्वासनस्य च
निर्विशेषस्य का भूषा को ऽलंकारो निराकृतेः

९ यद् विभाति सदनेकधा भ्रमात्, नाम-रूप-गुण-विक्रियात्मना
हेमवत् स्वय-मविक्रियं सदा, ब्रह्म तद् त्वमसि भावयात्मनि

१० यद् चकास्त्यनपरं परात्परं, प्रत्य-गेकरस-मात्म-लक्षणम्
सत्यचित्सुख-मनंत-मव्ययं, ब्रह्म तद् त्वमसि भावयात्मनि

[विवेक-चूडामणि]

१४ उपदेश-पंचकम्

१ वेदो नित्य-मधीयतां तदुदित कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेने-शस्य विधीयता-मपचितिः काम्ये मतिस् त्यज्यताम्
पापौघः परिधूयतां भव-सुखे दोषो ऽनुसंधीयतां
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्

२ संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर् दृढा-धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम्
सद्विद्वान् उपसृप्यतां प्रतिदिन तत्पादुके सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षर-मर्थ्यतां श्रुति-शिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्

३ वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुति शिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस् तर्को ऽनुसंधीयताम्
ब्रह्मास्मीति विभाव्यतां अहरहर् गर्वः परित्यज्यतां
देहे ऽहं मति-रुज्झ्यतां बुधजनैर् वादः परित्यज्यताम्

वाक्य-विचारः

५ निरंजनस्य किं धूपैर् दीपैर् वा सर्वसाक्षिणः
निजानंदैकतृप्तस्य नैवेद्य किं भवेत् इह

६ प्रदक्षिणा अनंतस्य अद्वयस्य कुतो नतिः
वेदवाक्यैर् अवेद्यस्य कुतः स्तोत्र विधीयते

७ स्वय प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः
अंतर्बहिश्च पूर्णस्य कथ उद्वासन भवेत्

८ एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा
एकबुद्धया तु देवेश विधेया ब्रह्मवित्तमैः

९ आत्मा त्व, गिरिजा मतिः, सहचराः प्राणाः, शरीरं गृह,
पूजा ते विषयोपभोग-रचना, निद्रा समाधि-स्थितिः,
संचारस्तु पदोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्

[परा पूजा]

वाक्य-विचारः

प्रकरणानि

१ लघु-वाक्यवृत्ति — १८

२ वाक्य-सुधा — ४५

- १ चिति-लक्षणम् — १९
- २ समाधय — ११
- ३ जीव-भेदा — १५

३ वाक्य-वृत्ति — २७

- १ त्वं-पदार्थ — १४
- २ तत्-पदार्थ — ८
- ३ वाक्यार्थ — १
- ४ अभ्यासावधि — ५

१

११ लघु-वाक्यवृत्तिः

१ स्थूलो मांसमयो देहो सूक्ष्मः स्याद् वासनामयः
ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सार्धं धी-प्राणौ तच्छरीर-गौ

२ अज्ञान कारण साक्षी बोधस् तेषां विभासकः
बोधाभासो बुद्धिगतः कर्ता स्यात् पुण्य-पापयोः

३ स एव संसरत् कर्म-वशात् लोक-द्वये सदा
बोधाभासात् शुद्धबोधं विविच्याद् अति-यत्नतः

४ जागर-स्वप्नयोरेव बोधाभास-विडंबना
सुप्तौ तु तल्लये बोधः शुद्धो जाड्यं प्रकाशयेत्

५ जागरे ऽपि धियस् तूष्णींभावः शुद्धेन भास्यते
धी-व्यापाराश्च चिद्भासाश्च् चिदाभासेन संयुताः

६ वह्नितप्त-जल ताप-युक्तं देहस्य तापकम्
चिद्भासा धीस् तदाभासयुक्तान्यं भासयेत् तथा

७ रूपादौ गुणदोषादि-विकल्पा बुद्धि-गाः क्रियाः
ताः क्रिया विषयैः सार्धं भासयन्ती चितिर् मता

८ रूपात् च गुण-दोषाभ्यां विविक्ता केवला चितिः
सैवानुवर्तते रूप-रसादीनां विकल्पने

९ क्षणे क्षणे ऽन्यथाभूता धी-विकल्पाश् चितिर् न तु
मुक्तासु सूत्रवद् बुद्धि-विकल्पेषु चितिस् तथा

१० मुक्ताभिर् आवृतं सूत्रं मुक्तयोर् मध्य ईक्ष्यते
तथा वृत्ति-विकल्पैश् चित् स्पष्टा मध्ये विकल्पयोः

११ नष्टे पूर्व-विकल्पे तु यावद् अन्यस्य नोदयः
निर्विकल्पक-चैतन्यं स्पष्टं तावद् विभासते

१२ एक-द्वि-त्रि-क्षणेष्वेवं विकल्पस्य निरोधनम्
क्रमेणाभ्यस्यतां यत्नाद् ब्रह्मानुभव-कांक्षिभिः

१३ सविकल्पक जीवो ऽयं ब्रह्म तन् निर्विकल्पकम्
'अहं ब्रह्मे'ति वाक्येन सो ऽयम् अर्थो ऽभिधीयते

१४ सविकल्पक चिद् यो ऽहं ब्रह्मैक निर्विकल्पकम्
स्वतः सिद्धा विकल्पास् ते निरोद्धव्याः प्रयत्नतः

१५ शक्यः सर्व-निरोधेन समाधिर् योगिनां प्रियः
तदशक्तौ क्षणं रुद्ध्वा श्रद्धालुर् ब्रह्मतारमन (?)

२६ श्रद्धालुर् ब्रह्मतां स्वस्य चिंतयेद् बुद्धि-वृत्तिभिः
वाक्य-वृत्त्या यथाशक्ति ज्ञात्वा ऽभ्यसतां सदा

२७ तच्-चिंतनं तत्-कथनं अन्योन्यं तत्-प्रबोधनम्
एतद् एकपरत्वं च ब्रह्माभ्यास विदुर् बुधाः

२८ देहात्म-धीवद् ब्रह्मात्म धी-दार्ढ्ये कृतकृत्यता
यदा तदाऽयं म्रियतां मुक्तो ऽसौ नात्र संशयः

[लघु-वाक्यवृत्तिः]

२ वाक्य-सुधा

१ चिति-लक्षणम्

१ रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्-दृश्यं दृक् तु मानसम्
दृश्या धी-वृत्तयः साक्षी दृगेव तु न दृश्यते

२ नीलपीत-स्थूलसूक्ष्म-ह्रस्वदीर्घादि भेदतः
नानाविधानि रूपाणि पश्येत् लोचन-मेकधा

३ आंध्य-मांद्य-पटुत्वेषु नेत्र-धर्मेषु चैकधा
संकल्पयेत् मनः-श्रोत्र-त्वगादौ योज्यतां इदम्

४ कामः संकल्प-संदेहौ श्रद्धाऽश्रद्धे धृतीतरे
ह्रीर् धीर् भी रित्येवमादीन् भासयत्ये कधा चितिः

५ नोदेति नास्तं एत्येषा न वृद्धिं याति न क्षयम्
स्वय विभात्य थान्यानि भासयेत् साधनं विना

६ चिच्छायाऽऽवेश-तो बुद्धौ भानं धीस् तु द्विधा स्थिता
एका ह्कृति रन्या स्याद् अंतःकरणरूपिणी

७ छायाहकारयो रैक्यं तप्तायःपिंडवत् मतम्
तदहकार-तादात्म्याद् देहम् चेतनतां अगात्

८ अहकारस्य तादात्म्यं चिच्छाया-देह-साक्षिभिः
सह-र्जं कर्म जं भ्रान्ति जन्यं च त्रिविधं क्रमात्

९ संबंधिनोः सतोर् नास्ति निवृत्तिः सहजस्य तु
कर्म-क्षयात् प्रबोधात् च निवर्तेते क्रमात् उमे

१० अहकार-लये सुप्तौ भवेत् देहो ऽप्यचेतन
अहकार-विकासार्धः स्वप्नः, सर्वस् तु जागरः

११ अंतःकरण-वृत्तिश् च चितिच्छायैक्य मागता
वासना कल्पयेत् स्वप्ने, बोधे ऽक्षैर् विषयान् बहिः

१२ मनोऽहंकृत्युपादान लिंग एक जडात्मकम्
अवस्था-त्रय मन्वेति जायते म्रियते तथा

१३ शक्ति-द्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम्
विक्षेप-शक्तिर् लिंगादि ब्रह्मांडान्तं जगत् सृजेत्

१४ सृष्टिर् नाम ब्रह्म-रूपे सच्चिदानंद-वस्तुनि
अब्धौ फेनादिवत् सर्व-नामरूप-प्रसारणा

१५ अंतर् दृग्-दृश्ययोर् भेदं बहिश्च ब्रह्म-सर्गयोः
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्

१६ साक्षिणः पुरतो भाति लिंगं देहेन संयुतम्
चितिच्छाया-समावेशात् जीवः स्याद् व्यावहारिकः

१७ अस्य जीवत्व-मारोपात् साक्षिण्य-प्यवभासते
आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भाते ऽपयाति तत्

१८ तथा सर्ग-ब्रह्मणोश् च भेद-मावृत्य तिष्ठति
या शक्तिस् तद्वशात् ब्रह्म विकृतत्वेन भासते

१९ अत्रा-प्यावृति-नाशेन विभाति ब्रह्म-सर्गयोः
भेदस् तयोर् विकारः स्यात् सर्गे, न ब्रह्मणि क्वचित्

२ समाधय

१ अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश-पंचकम्
आद्य-त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्

२ ख-वाय्वग्नि-जलोर्वीषु देव-तिर्यङ्-नरादिषु
अभिन्नाः सच्चिदानंदा भिद्यते रूप-नामनी

३ उपेक्ष्य नाम-रूपे द्वे सच्चिदानंद-तत्परः
समाधिं सर्वदा कुर्यात् हृदये वाथवा बहिः

४ स-विकल्पो निर्विकल्पः समाधिर् द्विविधो हृदि
दृश्य-शब्दानुवेधेन स-विकल्पः पुनर् द्विधा

५ कामाद्याश् चित्त-गा दृश्यास् तत्-साक्षित्वेन चेतनम्
ध्यायेत्, दृश्यानुविद्धो ऽयं समाधिः स-विकल्पकः

६ अ-संगः सच्चिदानंदः स्व-प्रभो द्वैत-वर्जितः
अस्मीति-शब्दविद्धो ऽयं समाधिः स-विकल्पकः

७ स्वानुभूति-रसावेशात् दृश्य-शब्दान् उपेक्षितुः
निर्विकल्पः समाधिः स्यात् निवातस्थित-दीपवत्

८ हृदीव बाह्य-देशे ऽपि यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि
समाधिर् आद्य सन्मात्रात् नामरूप-पृथक्कृतिः

९ अस्तब्धभावो वस्तु सच्चिदानंद-लक्षणम्
इत्यविच्छिन्न-चिंतायं समाधिर् मध्यमो भवेत्

७ चिदाभास-स्थिता निद्रा विक्षेपावृति-रूपिणी
आवृत्य जीव-जगती पूर्वे नूत्ने तु कल्पयेत्

८ प्रतीति-काले एवैते स्थितत्वात् प्रातिभासिके
नहि स्वप्न-प्रबुद्धस्य पुनः स्वप्ने स्थितिस् तयोः

९ प्रातिभासिक-जीवो यस् तज्-जगत् प्रातिभासिकम्
वास्तव मन्यते ऽन्यस् तु मिथ्येति व्यावहारिकः

१० व्यावहारिक-जीवो यस् तज्-जगद् व्यावहारिकम्
सत्य प्रत्येति, मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः

११ पारमार्थिक जीवस् तु ब्रह्मैक्य पारमार्थिकम्
प्रत्येति वीक्षते नान्यद् वीक्षते त्वनृतात्मना

१२ माधुर्य-द्रव-शैत्यानि नीर धर्मास् तरङ्गके
अनुगम्याथ तन् निष्ठे फेने ऽप्यनुगता यथा

१३ साक्षि-स्थाः सच्चिदानन्दाः सम्बन्धाद् व्यावहारिके
तद्द्वारेणानुगच्छन्ति तथैव प्रातिभासिके

१४ लये फेनस्य तद् धर्मा द्रवाद्याः स्युस् तरङ्गके
तस्यापि विलये नीरे तिष्ठन्त्येते यथा पुरा

१५ प्रातिभासिक जीवस्य लये स्युर् व्यावहारिके
तल्-लये सच्चिदानन्दाः पर्यवस्यन्ति साक्षिणि

८　अजडात्मवत् आभान्ति यत्-सांनिध्यात् जडा अपि
देहेंद्रिय-मन-प्राणा सो ऽहं इत्यवधारय

९　अगमत् मे मनो ऽन्यत्र सांप्रतं च स्थिरीकृतम्
एवं यो वेद धी-वृत्तिं सो ऽहं इत्यवधारय

१०　स्वप्न-जागरिते सुप्तिं भावाभावौ धियां तथा
यो वेत्त्य विक्रियः साक्षात् सो ऽहं इत्यवधारय

११　पुत्र-वित्तादयो भावा यस्य शेषतया प्रिया
द्रष्टा सर्व-प्रियतमः सो ऽहं इत्यवधारय

१२　पर-प्रेमास्पदतया मा न भूवं अहं सदा
भूयाम इति या द्रष्टा सो ऽहं इत्यवधारय

१३　य साक्षि-लक्षणो बोधस् त्वं-पदार्थ स उच्यते
साक्षित्वं अपि बोद्धृत्वं अविकारितया ऽऽत्मनः

१४　देहेन्द्रिय मन -प्राणाहंकृतिभ्यो विलक्षण
प्रोज्झिताशेष-षड्भाव-विकारस् त्वंपदाभिधः

८ कर्मणां फल-दातृत्वं यस्यैव श्रूयते श्रुतौ
जीवानां हेतु-कर्तृत्व तद् ब्रह्म त्ववधारय

३ वाक्यार्थ

१ तत्-त्वं-पदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थश् चिन्त्यते ऽधुना
तादात्म्य अत्र वाक्यार्थस् तयोरेव पदार्थयोः

२ संसर्गो वा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र समतः
अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः

३ प्रत्यग्बोधो य आभाति सो ऽद्वयानन्द-लक्षणः
अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः

४ इत्थ अन्योन्य-तादात्म्य-प्रतिपत्तिर् यदा भवत्
अब्रह्मत्व त्वमर्थस्य व्यावर्तेत तदैव हि

५ 'तत् त्व असि'-आदि-वाक्य च तादात्म्य प्रतिपादने
लक्ष्यौ तत्-त्वंपदार्थौ द्वौ उपादाय प्रवर्तते

६ आलम्बनतया भाति यो ऽस्मत्प्रत्यय-शब्दयोः
अन्तःकरण-संभिन्न-बोधः स त्व-पदाभिधः

४ प्रारब्ध-कर्म-वेगेण जीवन्मुक्तो यदा भवेत्
कश्चित् कालं अनारब्ध-कर्म-बंधस्य संक्षये

५ निरस्तातिशयानंदं वैष्णवं परमं पदम्
पुनरावृत्ति-रहितं कैवल्यं प्रतिपद्यते

प्रकरणानि

१	आत्म-बोध	२५
२	बन्धमोक्ष-कथा	१२
३	अद्वैत-मर्यादा	१
४	वेदान्त-डिंडिम	४
५	श्रुति-तात्पर्यम्	१२
६	अद्वैतोपमानम्	१२
७	ब्रह्मानुचिंतनम्	१२
८	उन्मनी	११
९	मह्यं नम	८
१	मौनं आश्रये	३
		१०

८ यथा काशो हृषीकेशो नानोपाधि-गतो विभुः
तद्भेदाद् भिन्नवद् भाति तन्नाशे केवलो भवेत्

९ नानोपाधि-वशादेव जाति-नामाश्रमादय:
आत्मन्या रोपितास् तोये रस-वर्णादि भेदवत्

१० पञ्चकोशादि-योगेन तत्तन्मय इव स्थित:
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि-योगेन स्फटिको यथा

११ वपुस्-तुषादिभिः कोशैर् युक्त युक्त्यवघाततः
आत्मान आन्तर शुद्धं विविच्यात् तंडुलं यथा

१२ सदा सर्व-गतो ऽप्यात्मा न सर्वत्रा वभासते
बुद्धौ एवा वभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत्

१३ देहेंद्रिय मनोबुद्धि-प्रकृतिभ्यो विलक्षणम्
तद्वृत्ति-साक्षिणं विद्यात् आत्मानं राजवत् सदा

१४ व्यापृत ष्विंद्रिय ष्वात्मा व्यापारीवा विवेकिनाम्
दृश्यत ऽभ्रषु धावत्सु धावन्न् इव यथा शशी

१५ आत्म-चैतन्य माश्रित्य देहेंद्रिय-मनोधिय:
स्व-क्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जना:

२४　उपाधिस्थो ऽपि तद्धर्मैर् अलिप्तो व्योमवत् मुनिः
　　सर्वविद् मूढवत् तिष्ठेत् असक्तो वायुवत् चरेत्

२५　उपाधि-विलयाद् विष्णौ निर्विशेषं विशेत् मुनिः
　　जले जलं वियद् व्योम्नि तेजस् तेजसि वा यथा

[आत्म-बोध]

२　बंध-मोक्ष — कथा

१　अत्रैव शृणु वृत्तांतं अपूर्वं श्रुति-भाषितम्
　　कश्चिद् गांधार-देशीयो महारत्न-विभूषितः

२　स्व-गृहे स्वांगणे सुप्तः प्रमत्तः सन् कदाचन
　　रात्रौ चौरैः समागम्य भूषणानां प्रलोभितः

३　बद्ध्वा देशांतरं चौरैः नीतः सन् गहने वने
　　भूषणान्यपहृत्यापि बद्धाक्ष-कर-पादकः

४　निक्षिप्तो विपिने घोरे कुश-कण्टक-वृश्चिकैः
　　व्याल-व्याघ्रादिभिश्चैव संकुले तरु-संकटे

५　कथंचित् पाशं परिभ्राम्य मुक्त-दृष्ट्यादि-बंधनः

६　स स्वस्थः उपायज्ञश्च पण्डितो निश्चितात्मकः
　　ग्रामाद् ग्रामांतरं गच्छन् मेधावी मार्ग-तत्परः

४ वेदांत-डिंडिम

१ दृग्-दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्पर-विलक्षणौ
दृग् ब्रह्म दृश्य मायेति सर्ववेदांत-डिंडिमः

२ अहं साक्षीति यो विद्यात् विविच्यैव पुनः पुनः
स एव मुक्तः स विद्वान् इति वेदांत-डिंडिमः

३ घट-कुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च
तद्वत् ब्रह्म जगत् सर्वं इति वेदांत-डिंडिमः

४ ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः
अनेन वेद्य सच्छास्त्र इति वेदांत-डिंडिमः

[ब्रह्मज्ञानावलीमाला]

५ श्रुति-तात्पर्यम्

स्व-रूपम्

१ अस्मि स्वयमित्यस्मिन् अर्थे कस्यास्ति संशयः पुंसः?
अत्रापि संशयश्चेत् संशयिता यः स एव भवसि त्वम्

२ मान प्रबोधयन्त बोध मानेन च बुभुत्सन्ते
एधाभिरेव दहन दग्धुं वांछन्ति ते महात्मानः

३ प्रत्यक्षाद्यनवगत श्रुत्या प्रतिपादनीय मद्वैतम्
द्वैत न प्रतिपाद्य तस्य स्वत एव लोक-सिद्धत्वात्

४ जगदाकारतया ऽपि प्रथत गुरुशिष्य-विग्रहतया ऽपि
ब्रह्माकारतया ऽपि प्रतिभातीदं परात्पर तत्त्वम्

५ सत्य जगदिति मान समुत्तये स्यान् मपक्व-चित्तानाम्
तस्मात् असत्य मेतद् निखिल प्रतिपादयन्ति निगमान्ता·

६ परिपक्व-मानसानां पुरुष-वराणां पुरातनं· सुकृतं
ब्रह्मैव इदं सर्वं जगदिति भूय प्रबोधयति एष

७ किमिद, किमस्य रूप, कथमिदमासीन्, अमुष्य का हेतु·
इति न कदाऽपि विचिन्त्य चिन्त्य मायति धीमता विश्वम्

८ दंतिनि दारु-विकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव
जगति तथा परमात्मा, परमात्मनि अपि जगत् तिरोधत्त

९ आत्ममये महति पट विविध जगत्-चित्र मात्मना लिखितम्
स्वयमव ककवन्मसौ पश्यन प्रमुद प्रयाति परमात्मा

१० एष विजया विदुषां पर्यंता ऽपि प्रपञ्च-मसारम्
पृथ गात्मना न किंचिद् पश्यपु· सकलनिगम-निर्णीतान्

११ किं चिन्त्यं किमचिन्त्यं किं कथनीयं किमप्यकथनीयम्
किं कृत्यं किमकृत्यं निखिलं भ्रमति जानतां विदुषाम्

१२ निखिलं हृश्यं विशेषं स्वरूपत्वेन पश्यतां विदुषाम्
बंधो नाऽपि न मुक्तिर् न परात्मत्वं न चाऽपि जीवत्वम्

[स्वात्म-निरूपणम्]

६ अद्वैतोपमानम्

१ अक्षि-दोषाद् यथैकोऽपि द्वयवत् भाति चंद्रमाः
एकोऽप्यात्मा तथा भाति द्वयवत् मायया मृषा

२ आकाशात् अन्य आकाश आकाशस्य यथा न हि
एकत्वात् आत्मना नान्य आत्मा सिध्यति चात्मनः

३ मेघ-योगात् यथा नीरं करकाकारतां इयात्
माया-योगात् तथाऽऽत्मा प्रपंचाकारतां इयात्

४ अयः-कुण्डाग्नि-संपर्कात् ज्वालामाला तथाऽस्ति हि
भाति स्थूलादिकं सर्व आत्मवत् स्वात्म-योगतः

५ पिण्डाग्नि गुड-संपर्कात् गुडवत् प्रीतिमान् यथा
आत्म-योगात् प्रमयादिर् आत्मवत् प्रीतिमान् भवत्

६ नानाविधेषु कुम्भेषु वसत्येकं नभो यथा
नानाविधेषु देहेषु तद्वद् एको वसाम्यहम्

७ उपमादीनि पुष्पाणि वर्तन्ते सूत्रके यथा
उपमायाम् तथा देहा वर्तन्ते मयि सर्वदा

८ पयक-रज्जु-रंध्रेषु नानैवैकापि सूर्य-भा
एको ऽप्यनकवत् भाति तथा यन्त्रेषु सवगः

९ मुकुरस्थ मुखं यद्वत् मुखवत्र प्रथते मृषा
बुद्धिस्थामासकम् तद्वत् आत्मवत् प्रथते मृषा

१० साम्रकल्पित-देवादिस् ताम्रात् अन्य इव स्फुरत्
प्रतिमान्यादिरूपेण तथात्मोऽय इदं जगत्

११ क्षीर-यागात् यथा नीरं क्षीरवत् दृश्यते मृषा
आत्म-यागात् अनात्माय आत्मवत् दृश्यते तथा

१२ क्षीरनीर-विवर-ज्ञा हंस एव न चेतरः
आत्मानात्म विवेक-ज्ञा यतिरेव न चेतरः

[अद्वैतानुभूति]

७ ब्रह्मानुचिंतनम्

१ अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्य-मव्ययम्
इति स्यात् निश्चितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत्

२ अहं आत्मा न चान्यो ऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्
सच्चिदानंदरूपो ऽहं नित्यमुक्त-स्वभाववान्

३ अज्ञानात् ब्रह्मणो जात आकाशं बुद्बुदोपमम्
आकाशात् वायु-रुत्पन्नो वायोस् तेजस् ततः पयः

४ अद्भ्यश्च पृथिवी जाता ततो व्रीहि-यवादिकम्
पृथिवी अप्सु पयो वह्नौ, वह्निर् वायौ, नभस्य सौ

५ नभो ऽप्यव्याकृते, तत् च शुद्धे, शुद्धो ऽस्म्यहं हरिः
अहं विष्णुः, अहं विष्णुः, अहं विष्णुः, अहं हरिः

६ आदिमध्यांत मुक्तो ऽहं न बद्धो ऽहं कदाचन
स्वभाव निर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः

७ ब्रह्मैवाहं न संसारी, मुक्तो ऽहं इति भावयेत्
अशक्नुवन् भावयितुं वाक्य एतत् सदा ऽभ्यसेत्

८ यत्ऽभ्यासेन तद्भावो भवेत् भ्रमर-कीटवत्
अत्रापहाय मतंद अभ्यसेत् कृत-निश्चयः

९ यावज्जीव सदाभ्यासात् जीवन्मुक्तो भवेत् यति
नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च

१० न मनो ऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्त अहंकृतिः
सदा-साक्षिस्वरूपत्वात् शिव एवास्मि केवलः

११ मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्
मयि सर्व लयं याति तद् ब्रह्मास्म्यहमद्वयम्

१२ अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवो ऽनुभवस् तथा
नाहं देहो, न मे देहः, केवलो ऽहं सनातनः

[ब्रह्मानुचिन्तनम्]

८ उन्मनी

१ नेत्रे ययोन्मेषनिमेष-शून्ये
वायुर् यया वर्जित-रेचपूरः
मनश्च सङ्कल्प-विकल्प-शून्यं
मनोन्मनी सा मयि सन्निधत्ताम्

२ चित्तेन्द्रियाणां चिर-निग्रहेण
श्वास-प्रचारे शमिते यमीन्द्राः
निवात-दीपा इव निश्चलाङ्गाः
मनोन्मनी-मग्नधियो भवन्ति

३ उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्
उपायमेकं तव निर्दिशामः
पश्यन् उदासीनतया प्रपंचं
संकल्पमुन्मूलय सावधानः

४ प्रसह्य संकल्प-परंपराणां
संभेदने संतत-सावधानम्
आलंब-नाशात् अपचीयमानं
शनैः शनैः शांतिमुपैति चेतः

५ निश्वास-लावैर् निभृतैः शरीरैर्
नेत्रांबुजैर् अर्धनिमीलितैश्च
आविर्भवन्तीं अमनस्कमुद्रां
आलोकयामो मुनि-पुंगवानाम्

६ अमी यमीन्द्राः सहजामनस्कात्
अहं-ममत्वे शिथिलायमाने
मनातिगं मारुत-वृत्ति-शून्यं
गच्छन्ति भावं गगनावशेषम्

७ निवर्तयन्तीं निखिलेन्द्रियाणि
प्रवर्तयन्तीं परमात्म-योगम्
संविन्मयीं तां सहजामनस्कां
कदा गमिष्यामि गतान्यभावः

८ प्रत्यग्विमर्शातिशयेन पुंसां
प्राचीन-गन्धेषु पलायितेषु
प्रादुर्भवेत् काचिदजाड्य-निद्रा
प्रपञ्च-चिन्तां परिवर्जयन्ती

९ विच्छिन्न-सङ्कल्पविकल्प-मूले
निःशेष-निर्मूलित-कर्मजाले
निरन्तराभ्यास-नितान्तभद्रा
सा जृम्भते योगिनि योग-निद्रा

१० विश्रान्तिमासाद्य तुरीय-तल्पे
विश्वाद्यवस्था-त्रितयोपरिस्थे
संविन्मयीं कामपि सर्वकालं
निद्रां सखे निर्विश निर्विकल्पाम्

११ प्रकाशमाने परमात्म भानौ
नश्यत्यविद्या-तिमिरे समस्ते
अहो बुधा निर्मल-दृष्टयोऽपि
किञ्चिन् न पश्यन्ति जगत् समग्रम्

[योग-तारावली]

९ मह्य नमः

१ देहो नाहमचेतनोऽयमनिशं कुम्भादिवत् निश्चितो
नाहं प्राणमयोऽपि वा हति-धृतो वायुर् यथा निश्चितः
सोऽहं नापि मनोमयः कपि-चलः कार्पण्य-दुष्टो न वा
बुद्धिर् बुद्ध-कुवृत्तिकेव कल्पना नाज्ञान-मंधतमः

२ मत्तो ऽन्यत् न हि किंचिदस्ति यदि चिद्भास्य ततम् तत् मृषा
गुञा-वह्निवदस्य सर्वकल्पनाधिष्ठानभूतो ऽस्म्यहम्
सर्वस्यापि दृग् अस्म्यहं सम-रसः शांतो ऽस्म्य पापो ऽस्म्यहं
पूर्णो ऽस्मि द्वय-वर्जितो ऽस्मि विपुलाकाशो ऽस्मि नित्यो ऽस्म्यहम्

३ मय्यस्मिन् परमात्मके श्रुतिशिरो-वेद्ये स्वतो-भासने
का वा विप्रतिपत्ति रेत दखिल भात्यत्र यत्संनिधे
भोगराज्यवशात् प्रतीत मखिल पश्यन् न तस्मिन् जनः
मदिग्धा ऽस्त्यत एव केवल-शिव कोऽपि प्रकाशो ऽस्म्यहम्

४ गमय्य किमिहास्मि सर्वपरिपूर्णस्याप्यखण्डाकृतेः
त्यज्य किमिहास्मि निष्क्रिय-तनोर् माखेकरूपस्य मे
निःनम्य न द्वय मन्यदपि वा नो वाप्युपेयांतर
शांताख्यास्मि विमुक्त-ताप-विमलो मेघा यथा निर्मलः

५ किं न॰ प्राप्तमित॰ पुरा, किमधुना लभ्यं विचारादिना
यस्मात् तन् सुखरूपमेव सततं ह्याज्वल्यमानो ऽस्म्यहम्
किं वापेक्ष्यमिहापि मय्यतितरां मिथ्या-विचारादिकं
द्वैताद्वैत-विवर्जिते सम-रसे मौनं परं संमतम्

६ श्रोतव्य च किमस्ति पूर्णसुखस्य मिथ्यापरोक्षस्य मे
मतव्य च न मेऽस्ति किंचिदपि वा नि॰संशय-ज्योतिष॰
ध्यातृध्येय-विभेदहानि-वपुषो न ध्येय मस्त्यव मे
सर्वात्मैक-महारसस्य सतत नो वा समाधिर् मम

७ आत्मानात्म-विवेचनापि मम नो विद्वत्-कृता रोचते
ऽनात्मा नास्ति, यदस्ति गोचर-वपु॰ क्व वा विवक्तुं क्षमी
मिथ्यावाद-विचार-चिंतन महो कृत्त्य ह्यनात्मका
भ्रांता एव न पार-गा दृढ-धियस् तूष्णीं शिलावत् स्थिता॰

८ योऽहं पूर्वमित॰ प्रशांत-कलना-शुद्धाऽस्मि बुद्धाऽस्म्यह
यस्मात् मत्त इद समुत्थित मभूत् एतत् मया धार्यते
मय्यव प्रलय प्रयाति निरधिष्ठानाय तस्मै सदा
सत्यानदचिदात्मकाय विपुल-प्रज्ञाय मह्य नम॰

[प्रौढानुभूति॰]

१० मौन माश्रये

१ सत्यचिद्घन मनन्त मद्वयं
सर्वदृश्य-रहित निरामयम्
यत् पद विमल मद्वयं शिवं
तत् सदा हमिति मौन माश्रये

२ पूर्ण मद्वय मखंड-चेतनं
विश्व-भेदकलनादि-वर्जितम्
अद्वितीय-परसंविदंशक
तत सदा हमिति मौन माश्रये

३ जन्ममृत्यु-सुखदुःख-वर्जित
जाति-नीति-कुल-गोत्र-दूरगम्
चिद्विवर्त जगता ऽस्य कारणं
तत सदा हमिति मौन माश्रये

[स्वात्म-प्रकाशिका]

ज्ञान-चर्चा

प्रकरणानि

१	नव-मतवादाः	२१
२	शून्यवाद-निरसनम्	२४
३	मुधा प्रयत्नो व्यर्थः	२४
४	श्रवणसहकारि-साधनापेक्षा	१४
५	गीता रहस्यम्	१५
		१००

[सर्ववेदांत सिद्धांतसार-संग्रहः]

३

७ देह आत्मा कथं नु स्यात् पर-संत्रो ह्यचेतन·
इंद्रियैश् चाल्यमानो ऽयं चेष्टते न स्वतः क्वचित्

८ बधिरो ऽहं च काणो ऽहं मूक इत्यनुभूतित·
इंद्रियाणि भवन्त्यात्मा येषां अस्त्यर्थ-वेदनम्

४

९ निश्चयं बुध्यन्त्यो ऽसहमानाः पृथगुत्तनः
इंद्रियाणि कथं त्वात्मा करणानि कुठारवत्

१० इंद्रियाणां चेष्टयिता प्राणो ऽय पंच-वृत्तिकः
सर्वावस्था स्ववस्थावान् सो ऽय आत्मत्व मर्हति
अहं क्षुधावान् तृष्णावान् इत्या घनुभवात् अपि

५

११ इति निश्चय मेतस्य बुध्य त्यपरो जड·
भवत्यात्मा कथ प्राणो वायुरेवैष आंतरः

१२ बहिर् यात्य न्तरायाति भीस्रका-वायुवद् मुहु
न हितं वाहितं वा स्वं अन्यद् वा वेद किंचन

१३ मनस् तु मम जानाति भववदन-कारणम्
यत् तस्मात् मन एवात्मा प्राणस् तु न कदाचन

९

२० इति निश्चय-मेतेषां द्वय-स्यपरो जडः
ज्ञानाज्ञानमयस् त्वात्मा कथं भवितु-मर्हति

२१ सुप्तोत्थित-जनैः सर्वैः शून्यमेवा नुस्मर्यते
यस् ततः शून्यमेवात्मा न ज्ञानाज्ञान-लक्षणः

२२ वेदेना प्यसदेवेद मग्र आसीत् इति स्फुटम्
निरुच्यते यतस् तस्मात् शून्यस्यैवा त्मता मता

× × ×

२३ इत्येव पंडितमन्यैः परस्पर-विरोधिभिः
निर्णीत-मत-जातानि खंडितान्येव पंडितैः

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

२ शून्यशंका-निरसनम्

१ सुषुप्ति-काले सकले विलीने
शून्यं विना नान्य-दिहोपलभ्यते
शून्यं त्वनात्मा न ततः परः को
ऽप्यात्माभिधानस् त्वनुभूयते ऽर्थः

२ यद्यस्ति चात्मा किमु नोपलभ्यते
सुप्तौ यथा तिष्ठति किं प्रमाणम्
किं-लक्षणा ऽसौ स कथं न बाध्यते
प्रबाध्यमाने ऽप्यहमादिषु स्वयम्

१० अन्वेषमाणः स्वयमन्यलोकैः
सौषुप्तिकं धर्ममवैति साक्षात्
सुषुप्त्याद्यभावस्य च यो ऽत्र बोद्धा
स एष आत्मा खलु निर्‌विकारः

११ यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयं-ज्योतिषः
सूर्यस्येव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम्
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षिति-तले दृष्टं तथैवात्मनो
नान्यः को ऽप्यनुभासको ऽनुभविता नातः परः कश्चन

१२ बुद्ध्यादि-वेद्य-विलयात् अयमेक एव
सुप्तो न पश्यति शृणोति न वक्ति किंचित्
सौषुप्तिकस्य तमसः स्वयमेव साक्षी
भूत्वात्र तिष्ठति सुखेन च निर्‌विकल्पः

१३ अनुस्यूतात्मनः सत्ता जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु
अहमस्मीत्यतो नित्यो भवत्यात्मायमव्ययः

१४ आयातासु गतासु शैशववयस्थावस्थासु जाग्रन्मुखा—
स्वन्यास्वप्यखिलासु वृत्तिषु धिया दृष्टास्वदृष्टास्वपि
गंगाभंग-परंपरासु जलवत् सत्तानुवृत्तात्मनस्
तिष्ठत्यत्र सदा स्थिरा ह्यहमहमित्येकात्मता साक्षिणः

२० आत्मनः सुखरूपत्वात् आनंदत्वं स्व-लक्षणम्
पर-प्रेमास्पदत्वेन सुखरूपत्व मात्मन'

२१ सुख-हेतुषु सर्वेषां प्रीतिः सावधि रीक्ष्यते
कदापि नावधिः प्रीतेः स्वात्मनि प्राणिनां क्वचित्

२२ आत्मा तः परम-प्रेमास्पदः सर्व-शरीरिणाम्
यस्य शेषतया सर्वं उपादेयत्व मृच्छति

२३ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च यच्च यावच्च चेष्टितम्
आत्मार्थमेव नान्यार्थं नातः प्रियतरः परः

२४ तस्मात् आत्मा केवलानंदरूपो
य' सर्वस्माद् वस्तुनः प्रेष्ठ उक्त'
यो वै अस्मात् मन्यतेऽन्य प्रिय य
सोऽयं तस्मात् शोकमेवा नुभुंक्ते

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

३ सुख-प्रयत्नो व्यर्थ

१ अपरः क्रियते प्रश्नो मयायं क्षम्यतां प्रभो
अज्ञ-वाग् अपराधाय कल्प्यते न महात्मनाम्

२ आत्मन' सुखरूपत्वे प्रयत्न' किमु देहिनाम्
एष मे संशयः स्वामिन् कृपयैव निरस्यताम्

३ आनदरूपं आत्मान अज्ञात्वैव पृथग्जनः
बहिः सुखाय यतते न तु कश्चित् विदन् बुधः

४ अज्ञात्वैव हि निक्षेप भिक्षां अटति दुर्मतिः
स्ववेश्मनि निधि ज्ञात्वा को नु भिक्षां अटेत् सुधीः

५ स्थूलं च सूक्ष्म च वपुः स्वभावत
दुःखात्मकं स्वात्मतया गृहीत्वा
विस्मृत्य च स्व सुखरूप मात्मन
दुःखप्रदेभ्यः सुख मज्ञ इच्छति

६ न हि दुःखप्रदं वस्तु सुख दातुं समर्हति
किं विष पिबता जन्तोर् अमृतत्व प्रयच्छति

७ आत्मान्यः सुख मन्यस्य एवं निरूपित्य पामरः
बहिः सुखाय यतते सत्यमव न संशयः

८ इष्टस्य वस्तुनो ध्यान-दर्शनाद्युपभुक्तिषु
प्रतीयते य आनदः सर्वेषां इह देहिनाम्

९ स वस्तु धर्मो ना यस्मात् मनस्येवो पलभ्यते
वस्तु-धर्मस्य मनसि कथ स्यात् उपलंभनम्

१० अन्यत्र स्वान्य धर्माणां उपलंभो न दृश्यते
तस्मात् न वस्तुधर्मो ऽस्य आनंदस्य तु कदाचन

११ नाप्येष धर्मो मनसो ऽसत्यर्थे तददर्शनात्
असति व्यञ्जके व्यङ्ग्यं नादत्तीति न मन्यताम्

१२ सत्यर्थे ऽपि च नोदेति ह्यानंदस् तूक्त-लक्षण
सत्यपि व्यञ्जके व्यङ्ग्यानुदयो नैव संमतः

१३ सत्त्वप्रधान चित्त ऽस्मिन् त्वात्मैव प्रतिबिंबति
आनंद-लक्षण स्वच्छ पयसीव सुधाकर

१४ सोऽयं आभास आनंदम् चित्ते यः प्रतिबिंबितः
पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्यां भवत्यु च्चावच स्वयम्

१५ यो बिंबभूत आनद स आत्मानंद-लक्षणः
शाश्वतो निरद्वय पूर्णो नित्य एकोऽपि निरमय

१६ स्थूलस्यापि च सूक्ष्मस्य दुःखरूपस्य धर्मिणः
लये सुषुप्तौ स्फुरति प्रत्यगानन्द-लक्षण

१७ न ह्यत्र विषयः कश्चिद् नापि बुद्ध्यादि किंचन
आत्मैव केवलानद मात्रम तिष्ठति निरद्वयः

१८ दुःखाभावः सुखमिति यद् उक्त पूर्व-वादिना
अनाघ्रातोपनिषदा तद् असारं मृषा वचः

१९ दुःखाभावस्तु लोष्टादौ विद्यते नानुभूयते
सुख-लक्षाऽपि सर्वेषां प्रत्यक्ष तदिद खलु

२० सद्घनोऽयं चिद्घनोऽयं आनंद-घन इत्यपि
अपरोक्षतयैषा त्मा समाधौ अनुभूयते

२१ यस्य-कस्यापि योगेन यत्र-कुत्रापि दृश्यते
आनंद: स परस्यैव ब्रह्मणः स्फूर्ति-लक्षणः

२२ सत्त्वं चित्त्वं तथा नंदस्वरूप परमात्मनः
निर्गुणस्य गुणायोगात् गुणास्तु न भवन्ति ते

२३ उष्णत्वं च प्रकाशत्व यथा वह्नेस् तथात्मनः
सत्त्व-चित्त्वानंदतादि स्वरूपं इति निश्चितम्

२४ अत एव सजातीय-विजातीयादि-लक्षण
भेदो न विद्यते वस्तुन्य द्वितीये परात्मनि

[सर्ववेदांत सिद्धांतसार-संग्रह.]

५४ श्रवणसहकारि-साधनापेक्षा

१ अखंडाम्या वृत्ति रेषा वाक्यार्थ-श्रुतिमात्रत:
भातु' समायत किं वा क्रियांतर मपेक्षते

२ मुख्य-गौणादि भेदन विपन्न स्त्वाधिकारिणः
तेषां प्रज्ञानुसारेणा खंडा वृत्तिर् उदेष्यत

३ श्रद्धा-भक्ति-पुरःसरेण विहितेनैवेश्वरं कर्मणा
संतोष्यार्जित-तत्प्रसाद-महिमा जन्मान्तरेष्वेव यः
नित्यानित्यविवेक-तीव्रविरति-न्यासादिभिः साधनैर्
युक्तः स श्रवणे सतां अभिमतो मुख्याधिकारी द्विजः

४ अध्यारोपापवाद-क्रम मनुसरता देशिकेनात्र वेत्त्रा
वाक्यार्थे बोध्यमाने सति सपदि सतः शुद्ध-बुद्धेर् अमुष्य
नित्यानन्दाद्वितीय निरुपम ममलं यत् परं तत्त्व मेकं
तद् ब्रह्मैवाहमस्मी त्युदयति परमाखण्डाकार-वृत्तिः

५ प्रज्ञा-मांद्य भवेत् येषां तेषां न श्रुतिमात्रतः
स्यात् अखंडाकारवृत्तिर् विना तु मननादिना

६ श्रवणात् मननात् ध्यानात् तात्पर्येण निरंतरम्
बुद्धेः सूक्ष्मत्व मायाति ततो वस्तू पलभ्यते

७ मदप्रज्ञावतां तस्मात् करणीयं पुनः पुनः
श्रवणं मननं ध्यानं सम्यग् वस्तू पलब्धये

८ सर्ववेदान्त-वाक्यानां षड्भिर् लिंगैः सदद्वये
परं ब्रह्माणि तात्पर्य-निश्चयं श्रवणं विदुः

९ श्रुतस्यैवाद्वितीयस्य वस्तुनः प्रत्यगात्मनः
वेदान्तवाक्यानुगुण-युक्तिभिस् त्वनुचिंतनम्

१०　मननं तच्छ्रुतार्थस्य साक्षात्करण-कारणम्

११　विजातीय-शरीरादि-प्रत्यय-त्याग-पूर्वकम्
सजातीयात्मवृत्तीनां प्रवाहकरणं यथा
तैलधारावद् च्छिन्न-वृत्त्या तद्ध्यान मिष्यते

१२　तावत्काल प्रयत्नेन कर्तव्य श्रवण सदा
प्रमाण-संशयो यावत् स्व-बुद्धेर् न निवर्तते

१३　प्रमेय-संशयो यावत् तावत् तु श्रुति-युक्तिभिः
आत्म-याथार्थ्य-निश्चित्यै कर्तव्य मननं मुहुः

१४　विपरीतात्मधीर् यावत् न विनश्यति चेतसि
तावत् निरंतर ध्यान कर्तव्य मोक्ष मिच्छता

[सर्ववेदान्त-सिद्धान्तसार-संग्रहः]

५　गीता-रहस्यम्

१　श्रोत्रस्य दैवत दिक् स्यात्, त्वचो वायुर्, दृशो रवि
जिह्वाया वरुणो दैवं, घ्राणस्य त्वश्विनौ उभौ

२　वाचो ऽग्निर्, हस्तयोर् इन्द्र, पादयोस्तु त्रिविक्रम
पायोर् मृत्युर्, उपस्थस्य त्वधिदैव प्रजापतिः

३ मनसो दैवतं चन्द्रो, बुद्धेर् दैवं बृहस्पतिः
रुद्रस् त्वहंकृतेर् दैवं, क्षेत्रज्ञम् चित्त-दैवतम्

४ दिगाद्या देवताः सर्वाः खादि-सप्ताश्व-संभवाः
समिता इंद्रिय-स्थाने ष्विंद्रियाणां समन्ततः
निगृह्णन्त्य् अनुगृह्णन्ति प्राणि-कर्मानुरूपतः

५ शरीर-करणग्रामा प्राणाद्यमधिदेवताः
पञ्चैते हेतवः प्रोक्ता निष्पत्तौ सर्व-कर्मणाम्

६ कर्मानुरूपेण गुणोदयो भवेत्
गुणानुरूपेण मनः-प्रवृत्तिः
मनानुसारैर् उभयात्मकेंद्रियैर्
निर्वर्त्यते पुण्यमपुण्यमत्र

७ करोति विज्ञानमयो ऽभिमानं
करोम्यहमिति मदात्मना स्थितः
आत्मा तु साक्षी न करोति किंचित्
न कारयत्यव तटस्थवत् सदा

८ द्रष्टा भोक्ता वक्ता कर्ता मोक्ता भवत्य हंकारः
स्वय मेतद्-विकृतीनां साक्षी निरूप एवात्मा

९ आत्मन' साक्षिमात्रत्वं न कर्तृत्वं न मोक्तृता
रविवत् प्राणिभिर् लोके क्रियमाणेषु कर्मसु

१० न ह्यकः कुरुते कर्म न कारयति जतव'
स्व-स्वभावानुरोधेन वर्तन्ते स्वस्व-कर्मसु

११ तथैव प्रत्यगात्मापि रविवत् निष्क्रियात्मना
उदासीनतयैवा स्ते देहादीनां प्रवृत्तिषु

१२ अज्ञात्वैव परं सत्त्व माया-मोहित-चतस'
स्वात्मन्या रोपयन्त्येतत् कर्तृत्वाद्य न्य-गोचरम्

१३ आत्म-स्वरूप मविचार्य विमूढ-बुद्धि'
आरोपय त्यखिल मेत दनात्म-कार्यम्
स्वात्मन्य संग-चिति निष्क्रिय एव शुद्धे
हृत्स्व मेघकृत धावनवत् भ्रमेण

१४ अस्मिन् आत्मन्य नात्मत्व अनात्मन्या त्मतां पुनः
विपरीततया ध्यस्य संसरन्ति विमोह-तः

१५ अनात्मनो जन्म-जरा-मृति-क्षुधा-
तृष्णा-सुख-क्लेश-भयादि-धर्मान्
विपर्ययेण ह्यतथाविधे ऽस्मिन्
आरोपयन्त्या त्मनि बुद्धि-दोषात्

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रह]

उपनिषत्-पद्धतिः

प्रकरणानि

१	ब्रह्मविचारंभः	८
२	वेदांत-श्रवणं कुर्यात्	१०
३	ज्ञान निष्ठा कर्तव्या	९
४	न नियोज्यो ऽहम्	५
५	सेतुः सर्व-व्यवस्थानाम्	५
६	मनो हि मविद्या	११
७	मनसः शोधनम्	९
८	मनः-सबोधनम्	११
९	मनसः साक्षी	९
१	मानसं तीर्थम्	५
११	जीवन्मुक्तानंदलहरी	६
१२	द्वादशो	१२
		१००

२ वेदांत-श्रवण कुर्यात्

१ वेदांत-श्रवण कुर्यात् मननं चोपपत्तिभि॰
योगेना-भ्यसनं नित्य ततो दर्शन-मात्मनः

२ शब्द-शक्तेर् अचिंत्यत्वात् शब्दात् एवा-परोक्ष-धी॰
प्रसुप्तः पुरुषो यद्वत् शब्देनैवा-वबुध्यते

३ आत्मानात्म-विवेकेन ज्ञान भवति निश्चलम्
गुरुणा बोधितः शिष्यः शब्द-ब्रह्मा-तिवर्तते

४ कर्म-शास्त्रे कुतो ज्ञानं तर्के नैवास्ति निश्चयः
सांख्य-योगौ भिदापन्नौ शाब्दिका॰ शब्द-तत्पराः

५ अन्ये पार्षदिन॰ सर्वे ज्ञानवार्ता-सुदुर्लभा॰
एक वेदांत-विज्ञान स्वानुभूत्या विराजते

६ चित्त चैतन्य-मात्रेण मयोगात् चेतना भवेत्
अर्थात् अर्थांतरे वृत्तिर् गंतु चलति चांतरे

७ चित्त चित् इति जानीयात् तकार-रहितं यदा
तकारो विषयाध्यासो जपा-रागो यथा मणौ

८ ज्ञयवस्तु-परित्यागात् ज्ञान तिष्ठति केवलम्
त्रिपुटी क्षीणतां एति ब्रह्म-निर्वाण-मृच्छति

९ मनोमात्रं इदं सर्व तच्च मनो ज्ञानमात्रकम्
अज्ञानं भ्रम इत्याहुः विज्ञानं परमं पदम्

१० अज्ञानं बंधदं ज्ञानं विज्ञानं मोक्षदायकम्
ज्ञानविज्ञान-निष्पन्नं गुरुमूर्त्तिमपि धारणम्

[महावाक्यरत्नावलि]

३ ज्ञान-निष्ठा कर्तव्या

६ मनो हि अविद्या

१ न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता
मनो ह्यविद्या भवबन्ध-हेतुः
तस्मिन् विनष्टे सकलं विनष्टं
विजृम्भितेऽस्मिन् सकलं विजृम्भते

२ स्वप्नेऽर्थ-शून्ये सृजति स्व-शक्त्या
भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम्
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्
तत् सर्वमेतद् मनसो विजृम्भणम्

३ सुषुप्ति-काले मनसि प्रलीने
नैवास्ति किंचित् सकल-प्रसिद्धेः
अतो मनः-कल्पित एव पुंसः
संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति

४ वायुनाऽऽनीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते
मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते

५ देहादि-सर्वविषये परिकल्प्य रागं
बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद् गुणेन
वैरस्यमत्र विषवत्सु विधाय पश्चात्
एनं विमोचयति तन् मन एव बन्धात्

१० अध्यास-दोषात् पुरुषस्य संसृतिर्
अध्यास-बन्धस् त्वमुनैव कल्पितः
रजस्तमो-दोषवतो ऽविवेकिनो
जन्मादि-दुःखस्य निदान मेतत्

११ तत् मनः-शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा
विशुद्धे सति चैतस्मिन् मुक्तिः कर-फलायते

[विवेक-चूडामणि]

७ मनसः शोधनम्

१ विक्षेप-शक्ती रजसः क्रियात्मिका
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी
रागादयो ऽस्याः प्रभवन्ति नित्य
दुःखादयो ये मनसो विकाराः

२ कामः क्रोधो लोभ-दंभाद्यसूया
अहंकारेर्ष्या-मत्सराद्यास् तु घोराः
धर्मा एते राजसाः पुं-प्रवृत्तिर्
यस्मात् एषा तद् रजो बन्ध-हेतुः

३ एषाऽऽवृतिर् नाम तमोगुणस्य
शक्तिर् यया वस्त्ववभासते ऽन्यथा
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेर्
विक्षेप-शक्तेः प्रसरस्य हेतुः

९ दृशि-स्वरूप गगनोपम परं
सकृद्-विभात त्वज मेक मक्षरम्
अ-लेपक सर्व-गत यद् द्वय
तदेव चाह सतत विमुक्त'

१० दृष्टिस्तु शुद्धो ऽह मविक्रियात्मको
न मे ऽस्ति कश्चिद् विषय' स्वभावतः
पुरस् तिरश् चोर्ध्व मधश् च सर्वतः
सपूर्ण भूमा त्वज आत्मनि स्थितः

११ सुषुप्त-जाग्रत्-स्वपतश्च दर्शनं
न मे ऽस्ति किंचित् तु मतेर् हि मोहनम्
स्वतश्च तेषां परतो ऽप्यसत्त्व-तस्
तुरीय एवास्मि सदा दृग् द्वय'

[उपदेश-साहस्री]

९ मनस साक्षी

१ सर्वेषां मनसा वृत्त अविशेषेण पश्यतः
तस्य म निर्विकारस्य विशेष' स्यात् कथंचन

२ मनो-वृत्त मनश् चैव स्वप्नवत् जाग्रतीक्षितु'
संप्रमाद् द्वयामस्मात् चिन्मात्रः सर्वगो ऽव्ययः

३ बुभुक्षा वा पिपासा वा शोक-मोहौ जरा-मृती
न विद्यन्ते ऽशरीरत्वात् व्योमवत् व्यापिनो मम

४ विक्षेपो नास्ति तस्मान् मे न समाधिस् ततो मम
विक्षेपो वा समाधिर् वा मनसः स्याद् विकारिणः

५ चिन्मात्र-ज्योतिषा सर्वाः सर्व-देहेषु बुद्धयः
मया यस्मात् प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो ह्यहम्

६ अ-समाधिं न पश्यामि निर्विकारस्य सर्वदा
ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य शोध्यं नान्यत् वि-पाप्मनः

७ यथा ऽन्य-शरीरेषु ममाहन्ता न चेष्यते
अस्मिन् अपि तथा देहे धी-साक्षित्वाविशेषतः

८ मा-रूपत्वात् यथा मानात् नाकाशस्य, तथैव च
ज्ञानाज्ञाने न मे स्यातां चिद्-रूपत्वाविशेषतः

९ राजवत् साक्षिमात्रत्वात्, सांनिध्यात् भ्रामको यथा
भ्रामयन् जगदात्मा ऽतः निष्क्रियो ऽभ्रामको ऽद्वयः

[उपदेश-साहस्री]

९ विशुद्ध-सत्त्वस्य गुणाः प्रसादः
स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशान्तिः
तृप्तिः प्रहर्षः परमात्म-निष्ठा
यया सदानन्द-रसं समृच्छति

[विवेक-चूडामणिः]

८ मनः-संबोधनम्

१ अहं-ममेति त्वमनर्थमीहसे
परार्थमिच्छंति तथान्य ईहितम्
न ते ऽर्थ-बोधो न हि मे ऽस्ति चार्थिता
ततश्च युक्तः शम एव ते मनः !

२ यतो न चान्यं परमात् सनातनात्
सदैव तृप्तो ऽस्म्यतो न मे ऽर्थिता
सदैव तृप्तश्च न कामये हि तं
यतस्व चेतः प्रशमाय ते हितम्

३ त्वयि प्रशान्ते नहि चास्ति भेद-धीर्
यतो जगत् मोह-मुपैति मायया
ग्रहो हि माया-प्रभवस्य कारणं
ग्रहात् विमोके नहि साऽस्ति कस्यचित्

९ दृशि-स्वरूप गगनोपम परं
सकृद्-विभातं त्वज मेक मक्षरम्
अ-लेपक सर्व-गतं यद् द्वय
तदेव चाह सततं विमुक्त

१० दृशिस्तु शुद्धो ऽह मविक्रियात्मको
न मे ऽस्ति कश्चिद् विषयः स्वभावतः
पुरस् तिरश् चोर्ध्व मधश् च सर्वतः
सपूर्ण-भूमा त्वज आत्मनि स्थितः

११ सुषुप्त-जाग्रत्-स्वपतश्च दर्शनं
न मे ऽस्ति किंचित् तु मतेर् हि मोहनम्
स्वतस्च तेषां परतो ऽप्यसत्त्व-तस्
तुरीय एवास्मि सदा दृग द्वय

[उपदेश-साहस्री]

९ः मनस साक्षी

१ सर्वेषां मनसो वृत्तं अविशेषेण पश्यतः
तस्य मे निर्विकारस्य विशेष स्यात् कथंचन

२ मनो-वृत्तं मनस् चैव स्वमवत् जाग्रती चितुः
सम्प्रसादे द्वयासत्त्वात् चिन्मात्रः सर्वगो ऽव्ययः

३ जिघत्सा वा पिपासा वा शोक मोहौ जरा-मृती
न विद्यन्ते ऽशरीरत्वात् व्योमवत् व्यापिनो मम

४ विक्षेपो नास्ति तस्मात् मे न समाधिस् ततो मम
विक्षेपो वा समाधिर् वा मनसः स्यात् विकारिणः

५ चिन्मात्र-ज्योतिषा सर्वाः सर्व-देहेषु बुद्धयः
मया यस्मात् प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो ह्यहम्

६ अ-समाधिं न पश्यामि निर्विकारस्य सर्वदा
ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य शोध्यं नान्यत् वि-पाप्मनः

७ यथा अन्य-शरीरेषु ममाहन्ता न चेष्यते
अस्मिन् अपि तथा देहे धी-माध्यि-मात्रि-विक्षेपनः

८ मा रूपम्यात् यथा मानाद् नाहंगाम्र, तथैव च
मानामान न म स्यातां चिद्रूपत्वाद्विपत्त

९ गच्छन् माधिमात्रस्यान्, सोनिष्पात् भ्रामकं यथा
भ्रामयन् जगदात्मा स्व निष्क्रियो ऽभ्रमको ऽध्यः

[उपदेश-साहस्री]

:१०: मानस तीर्थम्

१ परलोक-भयं यस्य नास्ति मृत्यु भयं तथा
तस्यात्मज्ञस्य शोच्याः स्युः स-ब्रह्मेन्द्रा अपीश्वराः

२ ईश्वरत्वेन किं तस्य ब्रह्मेन्द्रत्वेन वा पुनः
तृष्णा चेत् सर्वतश् छिन्ना सर्वदैन्योद्भवाऽशुभा

३ अहमित्यात्म-धीर् या च ममेत्यात्मीय-धीरपि
अर्थ-शून्ये यदा यस्य स आत्म-ज्ञो भवेत् तदा

४ वासुदेवो यथाऽश्वत्थे स्व-देहे चाब्रवीत् समम्
तद्वत् वेत्ति य आत्मानं सम स ब्रह्मवित्तमः

५ यस्मिन् देवाश्च वेदाश्च पवित्रं कृत्स्नमेकताम्
व्रजेत् तत् मानसं तीर्थं यस्मिन् स्नात्वाऽमृतो भवेत्

[उपदेश-साहस्री]

११ जीवन्मुक्तानन्दलहरी

१ पुर पौरान् पश्यन् नर-युवति-नामाकृति-मयान्
सुवेषान् स्वर्णालंकरण-कलितान् चित्र-सदृशान्
स्वयं साक्षी द्रष्टत्यपि च कलयन् तैः सह रमन्
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

२ वने वृक्षान् पश्यन् दलभरनतान् नम्र-शिखरान्
घनच्छाया-च्छन्नान् बहुल-कलकूजद्-द्विज-गणान्
भजन् घस्रे रात्रौ अवनितल-तल्पैकशयनो
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

३ कदाचित् प्रासादे क्वचिदपि च सौधे च धवले
कदाकाले शैले क्वचिदपि च कूलेषु सरिताम्
कुटीरे दान्तानां मुनिजन-वराणां अपि वसन्
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

४ कदाचित् मौनस्थः क्वचिदपि च वाग्वाद-निरतः
कदाचित् स्वानंदे हसति रभसा त्यक्त-वचमा
कदाचित् लोकानां व्यवहृति-समालोकन-परो
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

५ क्वचित् शैवैः सार्धं क्वचिदपि च शाक्तैः सह रमन्
कदा विष्णोर् भक्तैः क्वचिदपि च सौरैः सह वसन्
कदाचित् गाणेशैर् गत-सकलभेदो ऽद्वयतया
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

६ निराकारं क्वापि क्वचिदपि च साकारममलं
निजं शैवं रूपं विविध-गुण भेदेन बहुधा
कदाश्चर्यं पश्यन् किमिदमिति हृष्यन्नपि कदा
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

[जीवन्मुक्तानन्दलहरी]

१२ द्वादशी

१ आत्मानात्म-प्रतीति प्रथम मभिहिता सत्यमिथ्यात्व-योगात्
द्वेधा ब्रह्म-प्रतीतिर् निगम-निगदिता स्वानुभूत्यो ययस्या
आद्या देहानुबधात् भवति तदपरा सा च सर्वात्मकत्वात्
आदौ 'ब्रह्माहमस्मी'त्यनुभव उदिते 'खल्विदं ब्रह्म' पश्चात्

२ आत्मांभोधेस् तरंगो ऽस्म्यहमिति गमने भावयन्, आसन-स्थः
संवित्सूत्रानुविद्धो मणिरहमिति, वास्मीन्द्रियार्थ-प्रतीतौ
दृष्टो ऽस्म्या त्मावलोकात् इति, शयन-विधौ मम आनंद-सिंधौ,
अंतर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनु-भृतां यो नयत्येव मायुः

३ नैर्वेद ज्ञान-गर्भं द्विविध मभिहित तत्र वैराग्य माद्य
प्रायो दुःखावलोकात् भवति गृह-सुहृत्-पुत्र-वित्तेषणादेः
अन्यत् ज्ञानोपदेशात् मदुदित-विषये वान्तवत् हेयता स्यात्
प्रव्रज्या ऽपि द्विधा स्यात् नियमित-मनसां देहतो गेहतश् च

४ तिष्ठन् गेहे गृहेशो ऽप्यतिथिरिव निजं धाम गंतुं चिकीर्षुः
देहस्थं दुःख-सौख्यं न भजति सहसा निर्ममस्त्वाभिमानः
आयात्रा यास्यतीदं जलद-पटल-वत् यातु यास्यत्य वश्यं
दृढाय मर्त्यमेव, प्रविदित-विषयो यस्य तिष्ठत्यपस्तः

५ नोऽकस्मात् आर्द्र-मेधः स्प्रुशति च दहनः किंतु शुष्कं निदाघात्
आर्द्रं चेतो ऽनुबंधे कृत-सुकृत-मपि स्रोतक-कर्म-प्रजार्थैः
तद्वत् ज्ञानाग्नि-रेतत् स्पृशति न सहसा किंतु वैराग्य-शुष्कं
तस्मात् शुद्धो विराग प्रथम ममिहितम् तेन विज्ञान-सिद्धिः

६ प्रापश्यत् विश्व-मात्मेत्यय मिह पुरुषः शोक-मोहाद्यतीतः
शुक्रं प्रज्ञा-प्यगच्छत् स खलु सकलवित् सर्वसिध्यास्पद् हि
विस्मृत्य स्थूल-सूक्ष्म-प्रभृति-वपु रसौ सर्वसंकल्प-शून्यो
जीवन् मुक्तस् तुरीयं पद-मधिगतवान् पुण्य-पापैर् विहीनः

७ पिंडीभूतं पदत्र् जलनिधि-सलिले याति तत् सैंधवाख्यं
भूय प्रक्षिप्त मस्मिन् विलय मुपगतं नाम-रूपे जहाति
प्राज्ञस् तद्वत् परस्मन्य य भवति लयं तस्य भतो हिमांशौ,
वाक् अग्ना, चक्षु रर्के, पयसि पुन रसृग्-रेतसी, दिक्षु कर्णौ,

८ यत्राकाशावकाशः कलयति च कलामात्रतां यत्र कालो
यत्रैवा शासमान यदिदं हि विराट् पूर्व मवाग् इवास्ते
यत्र यत्रा विरासीत् महदपि महतम् तद् हि पूर्णात् च पूर्णं
सपूर्णात् अर्थवादे रपि भवति यथा पूर्व मेकार्णवांभ

१२ : द्वादशी

१ आत्मानात्म-प्रतीतिः प्रथम मभिहिता सत्यमिथ्यात्व-योगात्
द्वेधा ब्रह्म-प्रतीतिर् निगम-निगदिता स्वानुभूत्योपपत्त्या
आद्या देहानुबंधात् भवति तदपरा सा च सर्वात्मकत्वात्
आदौ 'ब्रह्माहमस्मी'त्यनुभव उदिते 'खल्विदं ब्रह्म' पश्चात्

२ आत्माम्भोधेस् तरंगो ऽस्म्यहमिति गमने भावयन्, आसन-स्थ
संवित्सूत्रानुविद्धो मणिरहमिति, वास्मीन्द्रियार्थ-प्रतीतौ
दृष्टो ऽस्म्यात्मावलोकाद् इति, शयन-विधौ मग्न आनंद-सिंधौ
अंतर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनु-भृतां यो नयत्येव मायुः

३ नैर्वेद ज्ञान-गर्भं द्विविध मभिहित तत्र वैराग्य माद्य
प्राप्या दुःखावलोकात् भवति गृह-सुहृत्-पुत्र वित्तैषणादेः
अन्यत् ज्ञानोपदेशात् यदुदित-विषय वान्तवत् हेयता स्यात्
प्रव्रज्या ऽपि द्विधा स्यात् नियमित-मनसां देहतो गेहतश्च

४ तिष्ठन् गेहे गृहेशो ऽप्यतिथिरिव निजं धाम गंतुं चिकीर्षुः
देहस्थं दुःख-सौख्यं न भजति सहसा निर्ममत्वाभिमानः
आयात्रा याम्यतीदं जलद-पटल-वत् याति यास्यत्य वश्यं
देहाद्य भवभव, प्रभिहित-विषयो यस्य तिष्ठत्यपत्नः

५ नोऽकस्मात् आर्द्र मेध' स्पृशति च दहनः किंतु शुष्कं निदाघात्
आर्द्रं चेतो ऽनुबंधै' कृत-सुकृत मपि स्रोक-कर्म-प्रजार्थैः
तद्वत् ज्ञानाग्नि रेतत् स्पृशति न सहसा किंतु वैराग्य-शुष्कं
तस्मात् शुद्धो विरागः प्रथम मभिहितम् तेन विज्ञान-सिद्धिः

६ प्रापश्यत् विश्व मात्मन्यय मिह पुरुषः शोक-मोहायतीत'
शुक्रं यस्मा ऽभ्यगच्छत् स खलु सकलवित् सर्वसिध्यास्पदं हि
विस्मृत्य स्थूल-सूक्ष्म-प्रभृति-वपु रसौ सर्वसंकल्प-शून्यो
जीवन् मुक्तस् तुरीय पद मधिगतवान् पुण्य-पापैर् विहीन'

७ पिंडीभूतं यदंतर् जलनिधि-सलिल याति तत् सैंधवाख्यं
भूयः प्रक्षिप्त मस्मिन् विलय मुपगत नाम-रूपे जहाति
प्राज्ञस् तद्वत् परात्मन्य य भवति लय तस्य यता हिमांशौ,
वाक् अग्नौ, चक्षु रर्के, पयसि पुन रसृग्-रेतसी, दिक्षु कर्णौ,

८ यत्राकाशावकाश' कलयति च कलामात्रतां यत्र कालो
यत्रैवा ऽात्ममान गृहदिह हि विराट् पूर्व मभाग् इवास्ते
यत्र यत्रा विरासीत् महदपि महतम् तद् हि पूर्णात् च पूर्ण
मपूर्णात् अर्णवादे रपि भवति यथा पूर्ण मकार्णवोऽभ'

९ अंतः सर्वौषधीनां पृथगमित-रसैर् गध-वीर्यैर् विपाकैर्
एकं पाथोद-पाथः परिणमति यथा तद्वदेवान्तरात्मा
नाना भूत-समावैर्, दहति वसुमती येन विश्वं, पयोदो
वर्षत्युष्णैर्, हुताशः पचति दहति वा येन सर्वान्तरो ऽसौ

१० दृष्टः साक्षात् इदानीं इह खलु जगतां ईश्वरः सविदात्मा
विज्ञान-स्थाणु रेको गगनवद् मितः सर्वभूतान्तरात्मा
दृष्ट ब्रह्मातिरिक्त सकल मिद मसत्स्वरूप माभास-मात्रं
द्रष्टं ब्रह्माह मस्मीत्य विरत मधुना ऽत्रैव तिष्ठेत् अनीह

११ तत् ब्रह्मैवाह मस्मी त्यनुभव उदितो यस्य कस्यापि चेत् वै
पुंसः श्रीसद्गुरूणां अतुलित-करुणापूर्ण-पीयूष-दृष्ट्या
जीवन्मुक्त स एव भ्रम-विधुर-मना निर्गते ऽन्त्याप्युपाधौ
नित्यानंदैकधाम प्रविशति परम नष्ट-संदेह-वृत्तिः

१२ कंचित् काल स्थित स्यौ पुन रिह भजते नैव देहादि-संघ
यावत् प्रारब्ध भोग कथमपि स सुख चेष्टते ऽसग-बुध्या
निर्द्वंद्वो नित्यशुद्धो विगलित-ममताहंकृतिर् नित्यतृप्तो
ब्रह्मानदस्वरूप स्थिरमति रचलो निर्गताशेषमोहः

[शत-श्लोकी]

अपरोक्षानुभूतिः

प्रकरणानि

I पूर्वार्धः, ब्रह्म-विद्या

१	साधन-चतुष्टयम्	१-९
२	विचारः	१०-१५
३	आत्मानात्मनोः पार्थक्यम्	१६-२७
४	आत्मनात्म-विभागो मिथ्या	२८-४०
५	दृष्टांत-संग्रहः	४१-४८
६	प्रारब्ध-निरासः	४९-५५

II उत्तरार्धः, योगविधिः

७	त्रिपंचांगानि	५६-८०
८	समाधेः विघ्नाः	८१-८४
९	ब्रह्म-वृत्ति	८५-९
१०	अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म भावना	९१-१०

--[अपरोक्षानुभूति

I पूर्वार्ध , ब्रह्म विद्या

१ साधन-चतुष्टयम्

१ श्रीहरिं परमानन्द उपदेष्टार मीश्वरम्
व्यापकं सर्व-लोकानां कारण त नमाम्य हम्

२ अपरोक्षानुभूतिर् वै प्रोच्यते मोक्ष-सिद्धये
सद्भिर् एषा प्रयत्नेन वीक्षणीया मुहुर् मुहुः

३ स्व-वर्णाश्रम धर्मेण तपसा हरि-तोषणात्
साधनं प्रभवत् पुंसां वैराग्यादि-चतुष्टयम्

४ ब्रह्मादि-स्थावरान्तेषु वैराग्य विषयेष्व नु
यथैव काक-विष्ठायां वैराग्यं तद् हि निर्मलम्

५ नित्यं आत्म-स्वरूप हि, दृश्य तद्-विपरीतगम्
एवं यो निश्चयः सम्यक्, विवेको वस्तुन स वै

६ सदैव वासना-त्याग शमो ऽय इति शब्दित
निग्रहो बाह्य-वृत्तीनां दम इत्यभिधीयते

७ विषयेभ्यः परावृत्ति परमोपरतिर् हि सा
सहन सर्व-दुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता

८ निगमाचार्य-वाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता
चित्तैकाग्र्य तु सल्-लक्ष्ये समाधान इति स्मृतम्

९ ससारबध-निर्मुक्तिः कथ मे स्यात् कदा विभो
इति या सुदृढा बुद्धिर् वक्तव्या सा मुमुक्षुता

२ विचारः

१० उक्त-साधन-युक्तेन विचारः पुरुषेण हि
कर्तव्यो ज्ञान-सिद्ध्यर्थ आत्मनः शुभ मिच्छता

११ नोत्पद्यते विना ज्ञान विचारेणान्य-साधनैः
यथा पदार्थ भानं हि प्रकाशेन विना क्वचित्

१२ को ऽहं कथ मिदं जातं को वा कर्ता ऽस्य विद्यते
उपादानं किमस्तीह, विचारः सो ऽय मीदृशः

१३ नाहं भूत-गणो देहः, नाहं चाक्ष-गणस् तथा
एतद्-विलक्षणः कश्चित्, विचारः सो ऽय मीदृशः

१४ अज्ञान-प्रभव सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते
सकल्पो विविधः कर्ता, विचारः सो ऽय मीदृशः

१५ एतयोर् यद् उपादानं एकं सूक्ष्मं सद ऽव्ययम्
यथैव मृद् घटादीनां, विचारः सो ऽय मीदृशः

३ आत्मानात्मनो पार्थक्यम्

१६ आत्मा विनिष्कलो ह्येकः, देहो बहुभिरावृतः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यन्ति, किं अज्ञानं अतः परम्

१७ आत्मा नियामकश् चान्तः, देहो बाह्यो नियम्यकः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यन्ति, किं अज्ञानं अतः परम्

१८ आत्मा प्रकाशकः स्वच्छः, देहस् तामस उच्यते
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यन्ति, किं अज्ञानं अतः परम्

१९ आत्मा नित्यो हि सद्रूपो, देहोऽनित्यो ह्यसन्मयः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यन्ति किं अज्ञानं अतः परम्

२० 'देहोऽहं' इत्ययं मूढो मत्वा तिष्ठत्यहो जनः
'ममायं' इत्यपि ज्ञात्वा घटद्रष्टेव सर्वदा

२१ ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२२ निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२३ निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो नित्यमुक्तोऽहमच्युतः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२४ निर्मलो निश्चलो ऽनंतः शुद्धो ऽहं अजरो ऽमरः
नाहं देहो असद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२५ स-देहे शोभन सर्व पुरुषाख्य च सम्मतम्
किं मूर्ख शून्य आत्मानं देहातीत करोपि भो

२६ अह स्फूर्तया सिद्ध, देहो स्थूलतया स्थितः
ममाय इति निर्देशात्, कथ स्यात् देहकः पुमान् !

२७ अहं विकारहीनस्तु, देहो नित्य विकारवान्
इति प्रतीयते साक्षात्, कथं स्यात् देहकः पुमान् ?

४ आत्मानात्म-विभागो मिथ्या

२८ चैतन्यस्यैकरूपत्वात् भेदो युक्तो न कर्हिचित्
जीवत्व च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्प-ग्रहो यथा

२९ रज्ज्वज्ञानात् क्षणेनैव यद्वत् रज्जुर् हि सर्पिणी
भाति तद्वत् चितिः साक्षात् विश्वाकारेण केवला

३० व्याप्य-व्यापकता मिथ्या सर्व आत्मेति शासनात्
इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः !

३१ ब्रह्मणः सर्व-भूतानि जायंते परमात्मनः
तस्मात् एतानि ब्रह्मैव भवंती-त्यवधारयेत्

५ दृष्टांत-संग्रह

४१ सर्पत्वेन यथा रज्जुः, रजतत्वेन शुक्तिका
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४२ कनकं कुंडलत्वेन, तरंगत्वेन वै जलम्
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४३ गृहत्वेनेव काष्ठानि, खड्गत्वेनैव लोहता
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४४ यथा वृक्ष-विपर्यासो जलात् भवति कस्यचित्
तद्वत् आत्मनि देहत्व पश्य त्यज्ञान-योगतः

४५ पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चचलम्
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्य त्यज्ञान-योगतः

४६ अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति सूर्यवत्
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्य त्यज्ञान-योगतः

४७ महत्त्वे सर्व-वस्तूनां अणुत्वं ह्यतिदूरत
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्य त्यज्ञान-योगतः

४८ अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति भाति वै
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्य त्यज्ञान-योगतः

६ प्रारब्ध-निरास

४९ एवम् आत्मन्यविद्यातो देहाध्यासो हि जायते
स एवात्मा परिज्ञातो लीयते च परात्मनि

५० आत्मानं सतत जानन् काल नय महा-मत
प्रारब्धं अखिल भुंजन् नोद्वेग कर्तु-मर्हसि

५१ उत्पन्नेऽप्यात्म-विज्ञाने प्रारब्ध नैव मुञ्चति
इति यत् श्रूयते शास्त्रे तत् निराक्रियतेऽधुना

५२ तत्त्वज्ञानोदयात् ऊर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते
देहादीनां असत्यत्वात् यथा स्वप्नो विबोधतः

५३ कर्म जन्मान्तर-कृतं प्रारब्धं इति कीर्तितम्
तत् तु जन्मान्तराभावात् पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्

५४ स्वप्न-देहो यथा ऽध्यस्तः, तथैवायं हि देहकः
अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे हि तत् कुतः

५५ देहस्यापि प्रपञ्चत्वात् प्रारब्धावस्थितिः कुतः
अज्ञानि जन-बोधार्थ प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः

II उत्तरार्धः, योगविधिः

७ त्रिपचांगानि

५६ त्रिपंचांगान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस हि लब्धये
तैश्च सर्वैः सदा कार्यं निदिध्यासनमेव तु

५७ नित्याभ्यासात् ऋते प्राप्तिर् न भवेत् सच्चिदात्मनः
तस्मात् ब्रह्म निदिध्यासेत् जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्

५८ यमो हि नियमस् त्यागः मौनं देशश्च कालतः
आसनं मूलबन्धश्च देह-साम्यं च दृक्-स्थितिः

५९ प्राण-संयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा
आत्म ध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यंगानि वै क्रमात्

६० सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानात् इंद्रियग्राम-संयमः
यमो ऽयं इति संप्रोक्तो ऽभ्यसनीयो मुहुर् मुहुः

६१ सजातीय-प्रवाहश्च विजातीय तिरस्कृतिः
नियमो हि परानंदो नियमात् क्रियते बुधैः

६२ त्यागः प्रपंचरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः

६३ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह
यत् मौनं योगिभिर् गम्यं तद् भवेत् सर्वदा बुधः

६४ वाचो यस्मान् निवर्तन्ते तद् वक्तुं केन शक्यते
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्द-विवर्जितः

६५ इति वा तद् भवेन् मौनं सतां सहज-संज्ञितम्
गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्म-वादिभिः

६६ आदौ अंते च मध्ये च जनो यस्मिन् न विद्यते
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः

६७ कल्पनात् सर्व-भूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः
काल-शब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्द अद्वयः

६८ सुखेनैव भवेद् यस्मिन् अजस्रं ब्रह्म-चिन्तनम्
आसनं तद् विजानीयान् नेतरत् सुख-नाशनम्

६९ सिद्धं यत् सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम्
यस्मिन् सिद्धाः समाविष्टास् तद् वै सिद्धासनं विदुः

७० यन् मूलं सर्व भूतानां यन् मूलं चित्त-बन्धनम्
मूल-बन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ राज-योगिनाम्

७१ अंगानां समतां विद्यात् समे ब्रह्मणि लीयते
नो चेत् नैव समानत्वं ऋजुत्वं शुष्क-वृक्षवत्

७२ दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी

७३ द्रष्टृ-दर्शन-दृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्
दृष्टिस् तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी

७४ चित्तादि-सर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्
निरोधः सर्व-वृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते

७५ निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायु-रीरितः

७६ ततस् तद्वृत्ति-नैश्चल्यं कुम्भकः प्राण-संयमः
अयं चापि प्रबुद्धानां अज्ञानां प्राण-पीडनम्

७७ विषये-ष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश् चिति मज्जनम्
प्रत्याहारः स विज्ञेयो ऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः

७८ यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस् तत्र दर्शनात्
मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता

७९ ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालंबतया स्थिति
ध्यान-शब्देन विख्याता परमानन्द-दायिनी

८० निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुन
वृत्ति-विस्मरण सम्यक् समाधिर् ज्ञान-संज्ञकः

८ समाधेर् विघ्ना॰

८१ एवं अकृत्रिमानन्दं तावत् साधु समभ्यसेत्
वश्यो यावत् क्षणात् पुंसः प्रयुक्तः सन्भवेत् स्वयम्

८२ ततः साधन-निर्मुक्तः सिद्धो भवति योगि-राट्
तत्-स्वरूपं न चैतस्य विषयो मनसो गिराम्

८३ समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात्
अनुसंधान-राहित्य आलस्यं भोग-लालसम्

८४ लयस् तमश्च विक्षेपो रसास्वादश् च शून्यता
एवं यद् विघ्न-बाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्म-विदा शनैः

९ः ब्रह्म-वृत्ति

५ भाव-वृत्त्या हि भावत्वं शून्य-वृत्त्या हि शून्यता
पूर्ण-वृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्व-मभ्यसेत्

६ ये हि वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः

७ ये हि वृत्तिं विजानन्ति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि
ये वै सत्-पुरुषा धन्या वन्द्यास् ते भुवन-त्रये

८ येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्द-वादिनः

९ कुशला ब्रह्म-वार्तायां वृत्ति-हीनाः सु-रागिणः
ते ह्यज्ञानि-समा नूनं पुनरायांति यांति च

निमेषार्धं न तिष्ठंति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना
यथा तिष्ठति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः

१० अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म भावना

०१ कार्ये कारणताऽऽयाता कारणे न हि कार्यता
कारणत्वं ततो गच्छेत् कार्याभावे विचारतः

०२ अथ शुद्धं भवेद् वस्तु यद् वै वाचामगोचरम्
द्रष्टव्यं मृद्-घटेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः

०३ अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर् ब्रह्मात्मिका भवेत्
उदेति शुद्ध-चित्तानां वृत्ति-ज्ञानं ततः परम्

०४ कारणं व्यतिरेकेण पुमान् आदौ विलोकयेत्
अन्वयेन पुनस् तद् हि कार्ये नित्यं प्रपश्यति

०५ कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात् कार्यं विसर्जयेत्
कारणत्वं ततो नश्येत् अवशिष्टं भवेत् मुनिः

०६ भावितं तीव्र-वेगेन वस्तु यत् निश्चयात्मना
पुमान् तद् हि भवेत् शीघ्रं ज्ञेयं भ्रमर-कीटवत्

०७ अदृश्यं भावरूपं च सर्वम् एव चिदात्मकम्
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद् बुधः

९८ दृश्य अदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिंतयेत्
विद्वान् नित्यसुखे तिष्ठेत् धिया चिद्रस-पूर्णया

९९ एभिर् अंगैः समायुक्तो राजयोग उदाहृतः
किंचित्-पक्व-कषायाणां हठयोगेन संयुतः

१०० परिपक्वं मनो येषां केवलो ऽयं च सिद्धिदः
गुरु-दैवत भक्तानां सर्वेषां सुलभो जवात्

प्रकरणानि

I	गुरु-शरणता	६०
१	मोक्षकारण-सामग्री	२१
२	शिष्य-देशिक-संवाद:	२४
३	मोहं जहि	११
II	सांख्य-बुद्धि:	५९
४	शरीरं सर्वं अव्यक्तं च	८
५	पंचकोश विलक्षण:	१४
६	पंचकोश-विलक्षणत्वम्	१४
७	सांख्य निष्ठा	२१
III	योग-बुद्धि:	९४
८	निर्वासनो भव	१६
९	महत्तारो हेम	१०
१०	न प्रमदितव्यम्	२६
११	समाधत्स्व	१२
१२	वैराग्य-बोधौ मुक्तिहेतू	१९
१३	वैराग्य-बोध-परिणाम:	११
IV	स्थित-प्रज्ञ:	३५
१४	स्थित प्रज्ञता	१५
१५	न पारमार्थिकं प्रारब्धादि	२०
V	ब्रह्म-निर्वाणम्	५२
१६	शिष्यस्य कृतार्थता प्रकाशनम्	२०
१७	आत्मारामः सन् चरस्व भय	२१
१८	ब्रह्म विहार:	११
		३००

— [विवेक-चूडामणि:]

६ संन्यस्य सर्व-कर्माणि भवबंध-विमुक्तये
यत्यतां पंडितैर् धीरैर् आत्माभ्यास उपस्थितै

७ चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये
वस्तु-सिद्धिर् विचारेण न किंचित् कर्म-कोटिभिः

८ सम्यग्-विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा
भ्रांतोदित महासर्प भयदुःख-विनाशिनी

९ साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभि॰
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिध्यति

१० आदौ नित्यानित्य-वस्तुविवेकः परिगण्यते
इहामुत्र-फलभोग विरागस् तदनंतरम्
शमादिषट्क-संपत्तिर् मुमुक्षुत्व इति स्फुटम्

११ ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या त्येवरूपो विनिश्चयः
सो ऽय नित्यानित्यवस्तु-विवेकः समुदाहृत

१२ तद् वैराग्यं जिहासा या दर्शन-श्रवणादिभि॰
दहादि-ब्रह्म-पयन्ते अनित्य भोग-वस्तुनि

१३ विरज्य विषय-व्रातात् दोष-दृष्ट्या मुहुर् मुहुः
स्व-लक्ष्य नियतावस्था मनस॰ शम उच्यते

१४ विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्व-स्व-गोलके
उभयेषां इंद्रियाणां स दमः परिकीर्तितः

१५ बाह्यानालंबनं वृत्तेर् एषोपरतिर् उत्तमा

१६ सहनं सर्व-दुःखानां अ-प्रतीकारपूर्वकम्
चिंता-विलाप-रहितं सा तितिक्षा निगद्यते

१७ शास्त्रस्य गुरु-वाक्यस्य सत्य-बुद्ध्यवधारणम्
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर् यया वस्तू पलभ्यते

१८ सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा
तत् समाधानम् इत्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्

१९ अहंकारादि-देहांतान् बंधान् अज्ञान-कल्पितान्
स्व-स्वरूपावबोधेन मोक्तुं इच्छा मुमुक्षुता

२० मंद-मध्यम-रूपा पि वैराग्येण शमादिना
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम्

२१ वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते
तस्मिन् एवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः

२२ एतयोर् मन्दता यत्र विरक्तत्व मुमुक्षयो:
मरौ सलिलवत् तत्र शमादेर् भासमात्रता

२३ मोक्ष-कारण-सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी
स्व-स्वरूपानुसंधानं भक्तिर् इत्यभिधीयते

२ शिष्य-देशिक-संवादः

१ उक्त-साधन-संपन्नस् तत्त्व-जिज्ञासु रात्मनः
उपसीदेत् गुरुं प्राज्ञं यस्मात् बंध-विमोक्षणम्

२ तं आराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्व-प्रश्रय-सेवनैः
प्रसन्न त अनुप्राप्य पृच्छेत् ज्ञातव्य मात्मनः

३ स्वामिन् नमस् ते नतलोक-बंधो
कारुण्य-सिंधो पतितं भवाब्धौ
मां उद्धरात्मीय-कटाक्ष-दृष्ट्या
ऋज्व्याति-कारुण्य-सुधाभिवृष्ट्या

४ शांता महांतो निवसन्ति संतो
वसंतवत् लोक-हितं चरंतः
तीर्णाः स्वयं भीम भवार्णवं जनान्
अहेतुना न्यान् अपि तारयन्तः

५ अयं स्वभावः स्वत एव यत् पर
श्रमापनोद-प्रवणं महात्मनाम्
सुधांशुर् एष स्वयम् अर्क-कर्कश
प्रभाभितप्तां अवति क्षितिं किल

६ कथं तरेयं भव-सिंधुम् एतं
का वा गतिर् मे, कतमोऽस्त्युपायः
जाने न किंचित् कृपयाऽव मां प्रभो
संसारदुःख-क्षतिम् आतनुष्व

७ तथा वदंतं शरणागतं स्वं
संसार-दावानल-ताप-तप्तम्
निरीक्ष्य कारुण्य-रसार्द्र-दृष्ट्या
दद्याद् अभीतिं सहसा महात्मा

८ विद्वान् स तस्मै उपसत्तिम् ईयुषे
मुमुक्षवे साधु यथोक्त-कारिणे
प्रशांत-चित्ताय शमान्विताय
तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात्

९ मा भैष्ट विद्वन् तव नास्त्यपायः
संसार-सिंधोस् तरणेऽस्त्युपायः
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि

१० श्रद्धा-भक्ति ध्यान-योगान् मुमुक्षोर्
मुक्तेर् हेतून् वक्ति साक्षात् श्रुतेर् गी
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
मोक्षो ऽविद्या-कल्पिताद् देह-बंधात्

११ धन्यो ऽसि कृतकृत्यो ऽसि पावितं ते कुलं त्वया
यत् अविद्याबंध-मुक्त्या ब्रह्मीभवितु मिच्छसि

१२ ऋणमोचन-कर्तारः पितुः संति सुतादयः
बंधमोचन-कर्ता तु स्वस्मात् अन्यो न कश्चन

१३ मस्तक-न्यस्त भारादेर् दुःखं अन्यैर् निवार्यते
क्षुधादि-कृत-दुःखं तु विना स्वेन न केनचित्

१४ पथ्यं औषध-सेवा च क्रियते येन रोगिणा
आरोग्य-सिद्धिर् दृष्टास्य नान्यानुष्ठित-कर्मणः

१५ वस्तु-स्वरूप स्फुटबोध-चक्षुषा, स्वेनैव वेद्यं न तु पण्डितेन
चंद्र-स्वरूप निज-चक्षुषैव ज्ञातव्य म न्यैर् अवगम्यते किम्

१६ ऽविद्या-काम-कर्मादि-पाशबधं विमोचितुम्
कः शक्नुयात् विना ऽऽत्मानं कल्प-कोटिशतैरपि

१७ वीणाया रूप-सौंदर्य तन्त्री-वादन-सौष्ठवम्
प्रजा-रंजनमात्रं सत् न साम्राज्याय कल्पते

१८ वाग् वैखरी शब्द-झरी शास्त्र-व्याख्यान-कौशलम्
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये

१९ अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला
विज्ञाते ऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला

२० शब्द-जाल महारण्य चित्त-भ्रमण-कारणम्
अतः प्रयत्नात् ज्ञातव्य तत्त्वज्ञात् तत्त्व मात्मनः

२१ न गच्छति विना पान व्याधिर् औषध-शब्दतः
विना ऽपरोक्षानुभव ब्रह्म-शब्दैर् न मुच्यते

२२ अकृत्वा शत्रु-संहार अगत्वा खिल-भू-श्रियम्
राजा ऽह इति शब्दात् नो राजा भवितु मर्हति

२३ आप्तोक्ति खननं तयोपरि शिलाद्युत्कर्षण स्वीकृतिं
निक्षेपः समपेक्षते नहि बहि' शब्दैस्तु निर्गच्छति
तद्वत् ब्रह्मविदोपदेश-मनन ध्यानादिभिर् लभ्यते
मायाकार्य तिरोहित स्व ममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभि'

२४ तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन भवबंध-विमुक्तये
स्वैरेव यत्न' कर्तव्यो रोगादौ इव पंडितैः

३ मोह जहि

१ मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्य मत्यंत मनित्य-वस्तुषु
तत शमश् चापि दमस् तितिक्षा
न्यास प्रसक्ताखिल-कर्मणां भृशम्

२ ततः श्रुतिस् तन्-मनन सतत्त्व-
ध्यानं चिरं नित्य-निरंतरं मुनेः
ततो ऽविकल्प पर मेत्य विद्वान्
इहैव निर्वाण-सुखं समृच्छति

३ मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजा तिदूराद् विषयान् विषं यथा
पीयूषवद् तोष-दया-क्षमार्जव-प्रशान्ति-
दान्तीर् भज नित्य मादरात्

४ य एषु मूढा विषयेषु बद्धा
रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन
आयांति निर्यांत्यध ऊर्ध्व मुच्चैः
स्वकर्म-दूतेन जवेन नीता

५ शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च
पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः
कुरंग-मातंग-पतंग-मीन-
भृंगा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम्

६ दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषाद् अपि
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्

७ विषयाशा-महापाशात् यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि

८ आपात-वैराग्यवतो मुमुक्षून्
भवाब्धि-पारं प्रतियातुमुद्यतान्
आशा-ग्रहो मज्जयते ऽन्तराले
निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात्

९ विषयाशा-ग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूह-वर्जितः

१० अनुक्षणं यत् परिहृत्य कृत्यं
अनाद्यविद्याकृत-बन्ध-मोक्षणम्
देहः परार्थो ऽयममुष्य पोषणे

११ शरीर-पोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति
ग्राहं दारु-धिया धृत्वा नदीं तर्तुं स गच्छति

१२ मोह एव महामृत्युर् मुमुक्षोर् वपुरादिषु
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदम् अर्हति

१३ मोहं जहि महामृत्युं देह-दार-सुतादिषु
यं जित्वा मुनयो यांति तद् विष्णो: परमं पदम्

II सांख्य-बुद्धि

४ शरीर-त्रय अव्यक्त च

१ त्वङ्-मांस-रुधिर-स्नायु-मेदो-मज्जास्थि-संकुलम्
पूर्णं मूत्र-पुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यम् इदं वपुः

२ पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्व-कर्मणा
समुत्पन्नम् इदं स्थूलं भोगायतनम् आत्मनः
अवस्था जागरम् तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः

३ वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च
प्राणादि पञ्चाभ्र मुखानि पञ्च
बुद्ध्याद्यविद्यापि च काम-कर्मणी
पुर्यष्टकं सूक्ष्म शरीरम् आहुः

४ इदं शरीरं शृणु सूक्ष्म-संज्ञितं
लिंगं त्वपंचीकृत-भूत-संभवम्
स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था
स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र

५ अव्यक्त-नाम्नी परमेश-शक्तिः
अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत् सर्व मिदं प्रसूयते

६ सत् नाप्यसत् नाप्युभयात्मिका नो
भिन्ना प्यभिन्ना प्युभयात्मिका नो
सांगा प्यनंगा ह्युभयात्मिका नो
महाद्भुता ऽनिर्वचनीयरूपा

७ शुद्ध-द्वय-ब्रह्म-विबोध-नाश्या
सर्प-भ्रमो रज्जु-विवेकतो यथा
रजस् तमस् सत्त्व मिति प्रसिद्धा
गुणास् तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः

८ अव्यक्त मेतत् त्रिगुणैर् निरुक्तं
तत् कारणं नाम शरीर मात्मनः
सुषुप्ति रेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीन-सर्वेन्द्रिय-बुद्धि-वृत्तिः

५ पंचकोश-विलक्षणः

१ अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यं अहंप्रत्यय-लंबनः
अवस्थात्रय-साक्षी सन् पंचकोश-विलक्षणः

२ यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन
यश् चेतयति बुद्ध्यादि न तद् यं चेतयत्य यम्

३ येन विश्वं इदं व्याप्तं यं न व्याप्नोति किंचन
आभा-रूपं इदं सर्वं यं भांतं अनुभात्य यम्

४ यस्य सन्निधिमात्रेण देहेंद्रिय-मनोधियः
विषयेषु स्वकीयेषु वर्तंते प्रेरिता इव

५ एषो ऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो, निरंतराखंड-सुखानुभूतिः
सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो, येनेषिता वाग्-असवश् चरंति

६ प्रकृति-विकृति-भिन्नः शुद्धबोध-स्वभावः
सद्‌असद् इदं अशेषं भासयन् निर् विशेषः
विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्व् अवस्था-
स्व् अहमहमिति साक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः

७ अत्रानात्मन्य् अहमिति मतिर् बंध एषो ऽस्य पुंसः
प्राप्तो ऽज्ञानात् जननमरण-क्लेशसंपात-हेतुः
येनैवायं वपुर् इदं असत् सत्यमित्यात्म-बुद्ध्या
पुष्यत्य् उक्षत्य् अवति विषयैस् तंतुभिः कोशकृद्वत्

८ अ-तस्मिन् तद्बुद्धिः प्रभवति विमूढस्य तमसा
विवेकाभावाद् वै स्फुरति भुजगे रज्जु-धिषणा
ततो ऽनर्थ-व्रातो निपतति समादातु रधिकस्
ततो यो ऽसद्ग्राह स हि भवति बंधः शृणु सखे

९ अखण्ड-नित्याद्वय-बोध-शक्त्या
स्फुरन्त मात्मान मनन्त-वैभवम्
समावृणोत्या वृति-शक्ति रेषा
तमोमयी राहुरिवार्क-बिंबम्

१० तिरोभूते स्वात्मन्य मलतर-तेजोवति पुमान्
अनात्मानं मोहाद् अहमिति शरीरं कलयति
ततः कामक्रोध-प्रभृतिभि रमुं बंधनगुणैः
परं विक्षेपाख्या रजस उरु-शक्तिर् व्यथयति

११ कवलित-दिननाथे दुर्दिने सांद्र-मेघैर्
व्यथयति हिम-झंझा-वायु रुग्रा यथैतान्
अविरत-तमसा ऽऽत्मन्या वृते मूढबुद्धिं
क्षपयति बहुदुःखैस् तीव्र-विक्षेप-शक्तिः

१२ एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बंधः पुंसः समागतः
याभ्यां विमोहितो देहं मत्वा ऽऽत्मानं भ्रमत्य यम्

१३ नास्त्रैर् न शस्त्रै रनिलेन वह्निना
छेत्तु न शक्यो न च कर्म-कोटिभि
विवेकविज्ञान-महासिना विना
धातुः प्रसादेन सितेन मञ्जुना

१४ मुञ्जात् इषीकामिव दृश्य-वर्गात्
प्रत्यंच मात्मान मसंग मक्रियम्
विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्वं
तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः

६ पंचकोश-विलक्षणत्वम्

१ देहो ऽय मन्न-भवनो ऽन्नमयस्तु कोशः
अन्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीनः
त्वक्चर्म-मांस-रुधिरास्थि-पुरीष-राशिर्
नाय स्वय भवितु मर्हति नित्य-शुद्धः

२ कर्मेन्द्रियै पचभि रचितो ऽयं
प्राणो भवेत प्राणमयस्तु कोश
येना त्मवान् अन्नमयो ऽन्नपूर्ण
प्रवर्तते ऽसौ सकल क्रियासु

३ नैवात्मापि प्राणमयो वायु-विकारो
गंता गंता वायुव दन्तर्-बहिरेषः
यस्मात् किंचित् क्वापि न वेत्ती ष्टमनिष्ट
स्वं वान्य वा किंचन नित्यं परतन्त्रः

४ ज्ञानेंद्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्
कोशो ममाहमिति वस्तु-विकल्प-हेतुः
संज्ञादि-भेदकलना-कलितो बलीयान्
तत्-पूर्वकोश मभिपूर्य विजृम्भते यः

५ मनोमयो नापि भवेत् परात्मा
आद्यंतवत्त्वात् परिणामि-भावात्
दुःखात्मकत्वात् विषयत्व-हेतोर्
द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्टः

६ बुद्धिर् बुद्धींद्रियैः सार्धं स-वृत्तिः कर्तृ-लक्षणः
विज्ञानमय-कोशः स्यात् पुंसः संसार-कारणम्

७ विज्ञानकोशो ऽयं मतिमकाशः,प्रकृष्ट-सांनिध्य-वशात् परात्मनः
अतो भवत्येष उपाधिरस्य, यदात्म धीः संसरति भ्रमेण

८ यो ऽयं विज्ञानमयः, प्राणेषु हृदि स्फुरत् स्वयं-ज्योतिः
कूटस्थः सन् आत्मा कर्ता भोक्ता [illegible]

९ अतो नायं परात्मा स्याद् विज्ञानमय-शब्दभाक्
विकारित्वात् जडत्वात् च परिच्छिन्नत्व-हेतुतः
दृश्यत्वाद् व्यभिचारित्वात् नानित्यो नित्य इष्यते

१० आनद-प्रतिबिंब-चुंबित-तनुर् वृत्तिस् तमो-जृंभिता
स्यात् आनदमयः प्रियादि-गुणकः स्वेष्टार्थ-लाभोदये
पुण्यस्या ऽनुभवे विभाति कृतिनां आनदरूपः स्वयं
भूत्वा नदति यत्र साधु तनुभृन्मात्रः प्रयत्नं विना

११ आनदमय-कोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्तिरुत्कटा
स्वप्न जागरयोर् ईषत् इष्ट-संदर्शनादिना

१२ नैवाय मानंदमयः परात्मा, सोपाधिकत्वात् प्रकृतेर् विकारात्
कार्यत्व-हेतोः सुकृत-क्रियायाः, विकारसंघात-समाहितत्वात्

१३ पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः
तन्निषेधावधि साक्षी बोधरूपो ऽवशिष्यते

१४ यो ऽय आत्मा स्वयं ज्योतिः पञ्चकोश-विलक्षणः
अवस्थात्रय-साक्षी सन् निर्विकारो निरञ्जनः
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता

७ सांख्य-निष्ठा

शिष्य उवाच

१ मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु
सर्वाभावं विना किंचिद् न पश्याम्यत्र हे गुरो
विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वात्मनाऽत्र विपश्चिता

श्रीगुरुः उवाच :

२ सत्यमुक्तं त्वया विद्वन् निपुणोऽसि विचारणे
अहमादि-विकारास् ते तदभावोऽयमप्यनु

३ सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते
तम् आत्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया

४ जाग्रत् स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृम्भते
प्रत्यग्रूपतया सदाऽहमहमित्यन्तः स्फुरन् एकधा
नानाकार-विकार भागिन इमान् पश्यन् अहंधी मुखान्
नित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि

५ घटोदके बिंबित-मर्क-बिंब
मालोक्य मूढो रवि-मेव मन्यते
तथा चिदाभास-मुपाधि-संस्थं
भ्रांत्या हमित्येव जडो ऽभिमन्यते

६ घट जल तद्गत-मर्क-बिंबं, विहाय सर्वे विनिरीक्ष्यते ऽर्कः
तटस्थ एतत्त्रिसयावभासकः, स्वय-प्रकाशो विदुषा यथा तथा-

७ देहं धियं चित्प्रतिबिंब-मेवं, विसृज्य बुद्धौ निहित गुहायम्
द्रष्टार-मात्मान मखण्ड-बोध, सर्व-प्रकाशं सदसद्-विलक्षणम्

८ ब्रह्माभिन्नत्व-विज्ञान भव-मोक्षस्य कारणम्
येना द्वितीय-मानंद ब्रह्म संपद्यते बुधैः

९ सत्यं ज्ञान-मनंत, ब्रह्म विशुद्धं परं स्वत -सिद्धम्
नित्यानंदैकरसं, प्रत्य-गभिन्नं निरंतरं जयति

१० सादिद परमाद्वैतं, स्वस्मात् अन्यस्य वस्तुनो ऽभावात्
न ह्यन्य-दस्ति किंचित्, सम्यक्-परमार्थ-तत्त्वबोधे हि

११ यदिदं सकल विश्व, नानारूप प्रतीत-मज्ञानात्
तत् सव ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेष-भावना-दोषम्

१२ केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूप, घटस्य सदर्शयितु न शक्यते
अतो घट: कल्पित एव मोहात्, मृदेव सत्यं परमार्थभूतम्

१३ सद्ब्रह्मकार्यं सकल सदेव, तन्मात्रमेतत् न ततो ऽन्यदस्ति
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो, विनिर्गतो निद्रितवत् प्रजल्पः

१४ यदि सत्यं भवेत् विश्व सुषुप्तौ उपलभ्यताम्
यत् नोपलभ्यते किंचित् अतो ऽसत् स्वप्नवत् मृषा

१५ अत: पर ब्रह्म सद् द्वितीय, विशुद्धविज्ञान-घनं निरंजनम्
प्रशांत मार्यतविहीन मक्रियं, निरंतरानंदरस-स्वरूपम्

१६ निरस्त-मायाकृत-सर्वभेदं,
नित्य सुखं निष्कल मप्रमेयम्
अरूप मव्यक्त मनाख्य मव्यय,
ज्योतिः स्वय किंचि दिद चकास्ति

१७ अहेय मनुपादेयं मनो-वाचां अगोचरम्
अप्रमर्य अनाद्यत ब्रह्म पूर्णं अह महः

१८ तत्-त्व-पदाभ्यां अभिधीयमानयोर्
ब्रह्मात्मयोः शोधितयोर् यदीत्थम्
श्रुत्या तयोस् 'तत् त्व मसीति' सम्यक्
एकत्वम् ...

१९ ऐक्य तयोर् लक्षितयोर् न वाच्ययोर्
निगद्यते ऽन्योन्य-विरुद्ध धर्मिणो
खद्योत भान्वारिव राज-भृत्ययोः
कूपांबुराश्योः परमाणु-मेर्वोः

२० तयोर् विरोधो ऽय मुपाधि-कल्पितो
न वास्तवः कश्चि दुपाधि रेषः
ईशस्य माया-महदादि-कारणं
जीवस्य कार्यं शृणु पंचकोशम्

२१ एतौ उपाधी पर-जीवयोस् तयोः
सम्यग्-निरासे न परो न जीव
राज्यं नरेंद्रस्य, भटस्य खेटकस्
तयोर् अपोह न भटो न राजा

२२ असौ मृषामात्रमिद प्रतीतं, जहीहि यत् स्वात्मतया गृहीतम्
ब्रह्माह मित्येव विशुद्धबुध्या विद्धि स्वमात्मान मखण्डबोधम्

२३ मृत्कार्य सकल घटादि सततं मृन्मात्र मेवा भितम्
तद्वत्त सज् जनित सदात्मक मिद सन्मात्रमेवा खिलम्
यस्मात् नास्ति सत पर किमपि तत् सत्य स आत्मा स्वयं
तस्मात् तत् त्व मसि प्रशांत ममलं ब्रह्मा द्वयं यत् परम्

६ यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्
तथा तथा मुचति बाह्य-वासना
निःशेषमोक्षे सति वासनानां
आत्मानुभूतिः प्रतिबंध-शून्या

७ स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः
वासनानां क्षयश् चातः स्वाध्यासापनयं कुरु

८ तमो द्वाभ्यां रजः सत्त्वात् सत्त्वं शुद्धेन नश्यति
तस्मात् सत्त्वं अवष्टम्भ्य स्वाध्यासापनयं कुरु

९ प्रारब्धं पुष्यति वपुर् इति निश्चित्य निश्चलः
धैर्यं आलम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु

१० कार्य-प्रवर्धनाद् बीज-प्रवृद्धिः परिदृश्यते
कार्य-नाशाद् बीज-नाशस् तस्मात् कार्य निरोधयेत्

११ वासना-वृद्धितः कार्यं कार्य-वृद्ध्या च वासना
वर्धते सर्वदा पुंसः संसारो न निवर्तते

१२ संसारबंध विच्छित्त्यै तत् द्वय प्रदहत् यतिः
वासना-वृद्धि रताभ्यां चिंतया क्रियया बहिः
ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृति मात्मनः

१३ उपायानां च क्षयोपाय: सर्वावस्थासु सर्वदा
सर्वत्र सर्वतः सत्र समसमात्रावलोकनम्

१४ सद्वासना-स्फूर्ति-विजृम्भणे सति
असौ विलीना त्वहमादि-वासना
अतिप्रकृष्टाप्यरुण-प्रभायां
विलीयते साधु यथा तमिस्रा

१५ तमस् तमःकार्य मनर्थ जालं
न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे
तथा ऽद्वयानन्द-रसानुभूतौ
नैवास्ति बन्धो न च दुःख-गन्धः

१६ दृश्य प्रतीतं प्रविलापयन् स्वयं
सन्मात्र मानन्दघनं विभावयन्
समाहितः सन् बहिरन्तरं वा
कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे

१० न प्रमदितव्यम्

१ प्रमादो ब्रह्म-निष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन
प्रमादो मृत्यु-रित्याह भगवान् ब्रह्मण सुतः

२ न प्रमादात् अनर्थो ऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपत
ततो मोहस् ततो ऽहंधीस् ततो बन्धस् ततो व्यथा

३ यथा प्रकृष्ट शैवाल क्षणमात्रं न तिष्ठति
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम्

४ लक्ष्य-च्युत चेत् यदि चित्त-मीषद्
बहिर्मुखं सनिपतेत् ततस् ततः
प्रमादतः प्रच्युत-केलिकंदुकः
सोपान-पंक्तौ पतितो यथा तथा

५ विषयेष्वा विशत चेतः सकल्पयति तद्-गुणान्
सम्यक्सकल्पनात् कामः कामात् पुंस प्रवर्तनम्

६ अत स्वरूप-विभ्रंशो विभ्रष्टस् तु पतत्यध
पतितस्य विना नाशं पुनर् नारोह ईक्ष्यते

७ अत प्रमादात् न परो ऽस्ति मृत्युर् ,विवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ
समाहित सिद्धि-मुपैति सम्यक्, समाहितात्मा भव सावधानः

ः९ः अहंकारो हेय

१ सन्त्य न्ये प्रतिबंधाः, पुंसः संसार-हेतवो दृष्टाः
तेषां एकं मूलं, प्रथम विकारो भवत्य हंकारः

२ अहंकार-ग्रहात् मुक्तः स्व-रूपं उपपद्यते
चंद्रवत् विमलः पूर्णः सदानंदः स्वयंप्रभः

३ ब्रह्मानंद-निधिर् महाबलवता हंकार-घोराहिना
संवेष्ट्या त्मनि रक्ष्यते गुणमयैश् चंडैस् त्रिभिर् मस्तकैः
विज्ञानाख्य-महासिना श्रुतिमता विच्छिद्य शीर्ष-त्रयं
निर्मूल्या हि मिमं निधिं सुखकरं धीरो ऽनुभोक्तुं क्षमः

४ यावद् वा यत्किंचिद्, विषदोष-स्फूर्ति रस्ति चेद् देहे
कथ मारोग्याय भवेत्, तद्वद हंतापि योगिनो मुक्त्यै

५ अहमो ऽत्यंत-निवृत्त्या, तत्कृत-नानाविकल्प-संहृत्या
प्रत्यक्-तत्त्व-विवेकात्, अय महं मस्मीति विंदते तत्त्वम्

६ अहंकर्तर्य स्मिन् अहमिति मतिं मुंच सहसा
विकारात्मन्या त्म-प्रतिफल-जुषि स्वस्थिति मुषि
यदध्यासात् प्राप्ता जनि-मृति जरा-दुःख-बहुला
प्रतीचश् चिन्मूर्तेस् तव सुखतनोः संसृति रियम्

१० न प्रमदितव्यम्

१ प्रमादो ब्रह्म-निष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन
प्रमादो मृत्यु रित्याह भगवान् ब्रह्मणः सुतः

२ न प्रमादात् अनर्थो ऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः
ततो मोहस् ततो ऽहंधीस् ततो बंधस् ततो व्यथा

३ यथा प्रकृष्ट शैवाल क्षणमात्रं न तिष्ठति
आवृणोति तथा माया प्राज्ञ वापि पराङ्मुखम्

४ लक्ष्य-च्युतं चेत् यदि चित्त मीषद्
बहिर्मुखं संनिपतेत् ततस् ततः
प्रमादतः प्रच्युत-केलिकन्दुकः
सोपान-पंक्तौ पतितो यथा तथा

५ विषयेष्वाविशत् चेतः संकल्पयति तद्-गुणान्
सम्यक्संकल्पनात् कामः कामात् पुंसः प्रवर्तनम्

६ ततः स्वरूप विभ्रंशो विभ्रष्टस् तु पतत्यधः
पतितस्य विना नाशं पुनर् नारोह इष्यते

७ अतः प्रमादात् न परो ऽस्ति मृत्युर् विवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ
समाहितः सिद्धि मुपैति सम्यक्, समाहितात्मा भव सावधानः

१५ कः पंडितः सन् सदसद्-विवेकी, श्रुति-प्रमाणः परमार्थ-दर्शी
जानन् हि कुर्यात् असतो ऽवलंबं, स्वपात-हेतोः शिशुवत् मुमुक्षुः

१६ देहादि-संसक्ति-मतो न मुक्तिर् मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः
सुप्तस्य नो जागरणं,न जाग्रतः स्वप्नस्,तयोर् भिन्नगुणाश्रयत्वात्

१७ अन्तर्-बहिः स्वं स्थिर-जंगमेषु, ज्ञानात्मना धारतया विलोक्य
त्यक्ताखिलोपाधि रखंडरूपः, पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः

१८ सर्वात्मना बंधविमुक्ति-हेतुः
सर्वात्मभावात् न परो ऽस्ति कश्चित्
दृश्याग्रहे सत्युपपद्यते ऽसौ
सर्वात्म भावो ऽस्य सदात्म-निष्ठया

१९ दृश्यस्याग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो
बाह्यार्थानुभव-प्रसक्त-मनसस् तत्तत्-क्रियां कुर्वतः
सन्न्यस्ताखिल-धर्मकर्म-विषयैर् नित्यात्मनिष्ठा-परैस्
तत्त्वज्ञैः करणीय मात्मनि सदानंदेच्छुभिर् यत्नतः

२० आरूढ-शक्तेरहमो विनाशः
कर्तुं न शक्यः सहसापि पंडितैः
ये निर विकल्पाख्य-समाधि-निश्चलास्
तान् अन्तरानंतभवा हि वासना

२१ अहंपुष्यैव मोहिन्या योजयित्वा वृतेर् बलात्
विक्षेप-शक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः

२२ विक्षेपशक्ति-विजयो विषमो विधातु
निःशेष मावरणशक्ति-निवृत्त्यभावे
दृग्-दृश्ययोः स्फुट-पयोजलवत् विभागे
नश्येत् तदावरण मात्मनि च स्वभावात्

२३ सम्यग्विवेकः स्फुटबोध जन्यो, विभज्य ..
छिनत्ति मायाकृत-मोहबन्धं, यस्मात् विमुक्तस्य पुनर् न

२४ परावरैकत्व-विवेक-वह्निर्, दहत्य विद्या-गहन अशेषम्
किं स्यात् पुनः संसरणस्य बीजं, अद्वैत-भाव समुपेयुषो

२५ आवरणस्य निवृत्तिर्, भवति च सम्यक्पदार्थ-दर्शनतः
मिथ्याज्ञान-विनाशात्, तद्वत् विक्षेपजनित-दुःखनिवृत्तिः

२६ इत्थं विपश्चित् सदसत् विभज्य
निश्चित्य तत्त्वं निजबोध-दृष्ट्या
ज्ञात्वा स्व मात्मान मखण्डबोधं
तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति

११ समाधत्त्व

१ समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं, श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि
त एव मुक्ता भवपाश-बंधनैर्, नान्ये तु पारोक्ष्य-कथाभिधायिनः

२ क्रियांतरासक्तिमपास्य कीटको
ध्यायन् यथालिं ह्यलिभावमृच्छति
तथैव योगी परमात्म-तत्त्वं
ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया

३ अतीव सूक्ष्मं परमात्म-तत्त्वं
न स्थूल-दृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति
समाधिनात्यन्त-सुसूक्ष्म-वृत्त्या
ज्ञातव्यमार्यैर् अतिशुद्ध-बुद्धिभिः

४ यथा सुवर्णं पुटपाक-शोधितं
त्यक्त्वा मलं स्वात्म-गुणं समृच्छति
तथा मनः सत्त्व-रजस्-तमो-मलं
ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम्

५ निरन्तराभ्यास-वशात् तदित्थं, पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा
तदा समाधिः स विकल्प-वर्जितः स्वतोऽद्वयानन्द रसानुभावकः

६ समाधिना नेन समस्त-वासना-ग्रन्थेर् विनाशो ऽखिलकर्म-नाशः
अन्तर्-बहिः सर्वत एव सर्वदा, स्वरूप-विस्फूर्ति रयत्नतः स्यात्

७ श्रुतेः शतगुण विद्यात् मनन मननादपि
निदिध्यासं लक्षगुणं अनंत निर्विकल्पकम्

८ निर्विकल्पक-समाधिना स्फुटं, ब्रह्मतत्त्व मवगम्यते ध्रुवम्
नान्यथा चलतया मनोगतेः, प्रत्ययांतर-विमिश्रित भवेत्

९ अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सदा, निरंतरं शांत-मनाः प्रतीचि
विध्वंसय ध्वांत मनाद्यविद्यया, कृतं सदेकत्व विलोकनेन

१० योगस्य प्रथम द्वार वाङ्-निरोधो ऽपरिग्रहः
निराशा च निरीहा च नित्य एकांत-शीलता

११ एकांत-स्थिति रिंद्रियोपरमणे हेतुर् दमश् चेतसः
संरोधे करणं शमेन विलयं यायात् अहं-वासना
तेनानंदरसानुभूति रचला ब्राह्मी सदा योगिनस्
तस्मात् चित्त-निरोध एव सतत कार्यः प्रयत्नात् मुनेः

१२ वाच नियच्छात्मनि तं नियच्छ
बुद्धौ धिय यच्छ च बुद्धि-साक्षिणि
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे
विलाप्य शांतिं परमां भजस्व

१२ वैराग्य-बोधौ मुक्ति-हेतू

१ अंतस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते
त्यजत्यंतर्बहिःसंग विरक्तस् तु मुमुक्षया

२ वैराग्य-बोधौ पुरुषस्य पक्षिवत्, पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम्
विमुक्ति-सौधाग्र-लताधिरोहणं,ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति

३ अत्यंत-वैराग्यवतः समाधिः, समाहितस्यैव दृढ-प्रबोधः
प्रबुद्ध-तत्त्वस्य हि बंध मुक्तिर्, मुक्तात्मना नित्यसुखानुभूतिः

४ आशां छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः सृतिस्
त्यक्त्वा जाति-कुलाश्रमेष्वभिमतिं मुञ्चातिदूराद् क्रियाः
देहादौ असति त्यजात्म-धिषणां प्रज्ञां कुरुष्वात्मनि
त्व द्रष्टा स्य मलो ऽसि निर्द्वय-परं ब्रह्मासि यद् वस्तुतः

५ लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येंद्रियं
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चल-तनुम् चोपेक्ष्य देह-स्थितिम्
ब्रह्मात्मैक्य मुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्या निशं
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर् भ्रमैः

६ विशुद्ध मंतःकरणं स्वरूपे, निवेश्य साक्षिण्य वबोधमात्रे
शनैः शनैः निश्चलतां उपानयन्, पूर्णं स्वमेवानुविलोकयेत् ततः

७ देहेंद्रिय-प्राणमनो-ऽहमादिभि
स्वाज्ञान-क्लृप्तैर् अखिलैर् उपाधिभिः
विमुक्त मात्मान मखडरूप
पूर्ण महाकाशमिवा वलोकयेत्

८ ब्रह्मादि-स्तंब-पर्यंता मृषामात्रा उपाधयः
ततः पूर्ण स्व मात्मान पश्येत् एकात्मना स्थितम्

९ स्वय ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वय इंद्रः स्वयं शिव
स्वय विश्वं इद सर्वं स्वस्मात् अन्यत् न किंचन

१० अत स्वयं चापि बहिः स्वय च, स्वय पुरस्तात् स्वयमेव पश्चात्
स्वय ह्यवाच्यां स्वयम प्युदीच्यां,तथो परिष्टात् स्वयमप्य धस्तात्

११ सदेवेदं सर्वं जग दवगतं वाङ्मनसयो
सतो ऽन्यत् नास्त्येव प्रकृति-पर-सीम्नि स्थितवतः
पृथक् किं मृत्स्नायाः कलश-घट-कुंभा द्यवगत
वदत्यष भ्रांतस् त्वमहमिति माया-मदिरया

१२ आकाशवत् निर् मल-निर् विकल्प
निःसीम-निष्पंदन निर् विकारम्
अंतर् बहिःशून्य मनन्य मद्वय
स्वयं पर ब्रह्म किमस्ति बोध्यम्

१३ अकम्पं किमु विपते ऽय बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वय
ब्रह्मैतम् जग दाततं नु सकलं ब्रह्मा द्वितीय श्रुतेः
ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्ध-मतयः संत्यक्त-बाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसति संतत-चिदानंदात्मनैव ध्रुवम्

१४ स्ववाकारं यावत् भजति मनुजम् ताव दशुचिः
परेभ्यः स्यात् क्लेशो जनन-मरण-व्याधि-निलयः
यदात्मानं शुद्ध कलयति शिवाकार-मचलं
सदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि

१५ समाहितायां सति चित्तवृत्तौ, परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः, प्रजल्पमात्रः परिशिष्यते ततः

१६ असत्कल्पो विकल्पो ऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

१७ द्रष्टृ-दर्शन-दृश्यादि भाव-शून्यैकवस्तुनि
निर्विकार निराकार निर्विशेषे भिदा कुत

१८ कल्पार्णव इवात्यंत-परिपूर्णैकवस्तुनि
निर्विकार निराकारे निर्विशेष भिदा कुत'

१९ चित्तमूला विकल्पा ऽय चित्ताभावे न कश्चन
अतश्च चित्त समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि

:१३ वैराग्य-बोध-परिणामः

१ किमपि सतत-बोधं केवलानंदरूपं
निरुपम-मतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम्
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ

२ प्रकृति-विकृति-शून्यं भावनातीत-भावं
समरस-मसमानं मान-संबंध-दूरम्
निगमवचन-सिद्धं नित्य-मस्मत्-प्रसिद्धं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ

३ अजर-ममर-मस्ताभास-वस्तुस्वरूपं
स्तिमित-सलिलराशि-प्रख्य-माख्या-विहीनम्
शमित-गुणविकारं शाश्वतं शांत-मेकं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ

४ छायेव पुंसः परिदृश्यमानं, आभासरूपेण फलानुभूत्या
शरीर-माराच्छववत् निरस्तं, पुनर् न संधत्त इदं महात्मा

५ समूल-मेतत् परिदह्य वह्नौ, सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
ततः स्वयं नित्य-विशुद्ध-बोधानंदात्मना तिष्ठति विद्-वरिष्ठः

७ अतीतानुसंधानं भविष्यदविचारणम्
औदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

८ गुणदोष-विशिष्टे ऽस्मिन् स्वभावेन विलक्षणे
सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

९ इष्टानिष्टार्थ-सम्प्राप्तौ समदर्शितया ऽऽत्मनि
उभयत्रा विकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

१० देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाव-वर्जितः
औदासीन्येन यस् तिष्ठेत् स जीवन्मुक्त-लक्षणः

११ न प्रत्यग्-ब्रह्मणोर् भेदं कदापि ब्रह्म-सर्गयोः
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त-लक्षणः

१२ साधुभिः पूज्यमाने ऽस्मिन् पीड्यमाने ऽपि दुर्जनैः
समभावो भवेद् यस्य स जीवन्मुक्त-लक्षणः

१३ यत्र प्रविष्टा विषयाः परेरिता, नदी-प्रवाहा इव वारि-राशौ
लिनन्ति सन्मात्रतया न विक्रियां, उत्पादयन्त्येष यतिर् विमुक्तः

१४ विज्ञात-ब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः
अस्ति चेन् न स विज्ञात-ब्रह्मभावो बहिर्मुखः

१५ अत्यन्त-कामुकस्यापि वृत्तिः कुण्ठति मातरि
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः

:१५: प्रारब्धादे कर्मणो न पारमार्थिकता

१ निदिध्यासन-शीलस्य बाह्य-प्रत्यय ईष्यते
ब्रवीति श्रुति रेतस्य प्रारब्ध फल-दर्शनात्

२ सुखाद्यनुभवो यावत् तावत् प्रारब्ध मिष्यते
फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित्

३ 'अह ब्रह्मे' ति विज्ञानात् कल्प-कोटिशतार्जितम्
सञ्चितं विलय याति प्रबोधात् स्वप्न-कर्मवत्

४ स्वं असगं उदासीनं परिज्ञाय नभो यथा
न श्लिष्यते यतिः किंचित् कदाचित् भावि-कर्मभिः

५ ज्ञानोदयात् पुरा रम्धं कर्म ज्ञानात् न नश्यति
अदत्वा स्वफल, लक्ष्य उद्दिश्यो त्सृष्ट-बाणवत्

६ व्याघ्र-बुध्या विनिर् मुक्तो बाण' पश्चात् तु गा-मतौ
न तिष्ठति, छिनत्त्येव लक्ष्यं वगेन निर् भरम्

७ प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः
सम्यग्ज्ञान-हुताशनेन विलयः प्राक्संचितागामिनाम्
ब्रह्मात्मैक्य मवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थितास्
तेषां तत् त्रितय नहि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर् गुणम्

८ उपाधि-तादात्म्य-विहीन-केवल,-ब्रह्मात्मनैवा रमनि तिष्ठतो मुनेः
प्रारब्ध-सद्भाव-कथा न युक्ता, स्वप्नार्थ-सबंध-कथेव जाग्रत

९ नहि प्रबुद्ध प्रतिभास-देहे, देहोपयोगिन्यपि च प्रपंचे
करोत्य हंतां ममतां इदंतां, किंतु स्वयं तिष्ठति जागरेण

१० न तस्य मिथ्यार्थ-समर्थनेच्छा, न संग्रहस् तज्जगतो ऽपि दृष्टः
तत्रानुवृत्तिर् यदि चेत् मृषार्थे, न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम्

११ तद्वत् परे ब्रह्मणि वर्तमानः, सदात्मना तिष्ठति नान्य दीक्षते
स्मृतिर् यथा स्वप्न-विलोकितार्थे, तथा विदः प्राशन-मोचनादौ

१२ कर्मणा निर्मितो देह प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम्
न अनादेर आत्मनो युक्तं नैवात्मा कर्म-निर्मितः

१३ प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः
देहात्मभावो नष्ट प्रारब्धं त्यज्यतां अतः

१४ ज्ञानेना ज्ञान-कार्यस्य समूलस्य लयो यदि
तिष्ठत्ययं कथं देह इति शंकावतो जडान्

१५ समाधातुं बाह्य-दृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः
न तु देहादि-सत्यत्व-बोधनाय विपश्चिताम्

१६ निरस्त-रागा विनिरस्त-भोगाः
शांता॰ सुदांता यतयो महांत॰
विज्ञाय सर्व्व पर॰मेत दंत
प्राप्ता॰ परां निरवृति॰मात्म-योगात्

१७ भवान् अपीद परतत्त्व॰मात्मन॰
स्वरूप॰मानद-घन विचार्य
विधूय मोह स्वमन॰-प्रकल्पित
मुक्त॰ कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः

१८ क्षुधो मोचस्य तृप्तिस्य चितारोग्य-क्षुधादय॰
स्वेनैव वेद्या यमज्ञान परेषां भानुमानिकम्

१९ तट-स्थिता बोधयन्ति गुरव॰ श्रुतयो यथा
प्रज्ञयैव तरेत् विद्वान् ईश्वरानुगृहीतया

२० वेदांत-सिद्धांत-निरुक्ति रेषा, ब्रह्मैव जीव॰ सकल जगत् च
अखण्डरूप-स्थितिरेव मोक्षो, ब्रह्मा॰द्वितीयं श्रुतयः प्रमाणम्

V ब्रह्म निर्वाणम्

१६ : शिष्यस्य कृतार्थता प्रकाशनम्

१ इति गुरु-वचनात् श्रुति-प्रमाणात्
पर मवगम्य स्वतत्त्व मात्म-युक्त्या
प्रशमित-करणः समाहितात्मा
क्वचिद चलाकृति रात्म-निष्ठितो ऽभूत्

२ कञ्चित् कालं समाधाय परे ब्रह्मणि मानसम्
उत्थाय परमानन्दात् इदं वचन मब्रवीत्

३ वाचा वक्तु मशक्यमेव मनसा मन्तुं न वा शक्यते
स्वानन्दामृतपूर-पूरित-परब्रह्माम्बुधेर् वैभवं
अम्भोराशि-विशीर्ण-वार्षिकशिला भावं भजन् मे मनो
यस्यांशांश-लवे विलीन मधुना नन्दात्मना निर्वृतम्

४ क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनं इदं जगत्
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम्

५ किं हेयं किं उपादेयं किं अन्यत् किं विलक्षणम्
अखण्डानन्द-पीयूष-पूर्णे ब्रह्म-महार्णवे

६ न किंचिद् अत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम्
स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्षणः

७ धन्यो ऽहं कृतकृत्यो ऽहं विमुक्तो ऽहं भव-ग्रहात्
नित्यानन्दस्वरूपो ऽहं पूर्णो ऽहं त्वदनुग्रहात्

८ असङ्गो ऽहं अनङ्गो ऽहं अलिङ्गो ऽहं अभङ्गुरः
प्रशान्तो ऽहं अनन्तो ऽहं अमलो ऽहं चिरन्तनः

९ द्रष्टुः श्रोतुर् वक्तुः, कर्तुर् भोक्तुर् विभिन्न एवाहम्
नित्य-निरन्तर निष्क्रिय,-निःसीमासङ्ग-पूर्णबोधात्मा

१० सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो, ज्ञानात्मनान्तर्बहिराश्रयः सन्
भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वं, यद्यत् पृथग् दृष्टमिदन्तया पुरा

११ मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्व-वीचयः
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया-मारुत-विभ्रमात्

१२ न मे देहेन संबन्धो मेघेनेव विहायसः
अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तयः

१३ उपाधिरायाति स एव गच्छति, स एव कर्माणि करोति भुङ्क्ते
स एव जीर्यन् म्रियते सदाहं, कुलाद्रिवत् निश्चल एव संस्थितः

१४ न मे प्रवृत्तिर् न च मे निवृत्तिः, सदैकरूपस्य निरंशकस्य
एकात्मको यो निबिडो निरंतरो, व्योमेव पूर्णः स कथं नु चेष्टते

१५ कर्तापि वा कारयितापि नाहं
भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम्
द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं
सो ऽहं स्वयंज्योतिर् अनीदृगात्मा

१६ चले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर् घट-धर्मैर् नभो यथा

१७ सन्तु विकाराः प्रकृतेर्, दशधा शतधा सहस्रधा वापि
किं मे ऽसङ्ग-चितेस् तैर्, न घनः क्वचिद् अम्बरं स्पृशति

१८ सर्वाधारं सर्ववस्तु-प्रकाशं, सर्वाकारं सर्वगं सर्व शून्यम्
नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं, ब्रह्माद्वैतं यत् तदेवाहम् अस्मि

१९ स्वाराज्य-साम्राज्य-विभूतिर् एषा
भवत्कृपा श्रीमहिम-प्रसादात्
प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने
नमो नमस् ते ऽस्तु पुनर् नमो ऽस्तु

नमस् तस्मै सदैकस्मै कस्मैचिन् महसे नमः
यद् एतद् विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते

१७ आत्माराम सन् काल नय

१ इति नत मवलोक्य शिष्यवर्यं, समधिगतात्मसुखं प्रबुद्ध-तत्त्वम्
प्रमुदित-हृदयः स देशिकेन्द्रः, पुन रिद माह वचः परं महात्मा

२ भ्रम-प्रत्यय-संततिर् जग दतो भ्रांतैव सत् सर्वत
पश्या ध्यात्म-दृशा प्रशांत मनसा सर्वा स्ववस्था स्वपि
रूपात् अन्य दवेक्षितं किमभितश् चक्षुष्मतां दृश्यते
तद्वत् ब्रह्मविदः सतः किमपरं बुद्धेर् विहारास्पदम्

३ कस् तां परानंद-रसानुभूतिं, उत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान्
चंद्रे महाह्लादिनि दीप्यमाने, चित्रेंदु मालोकयितुं क इच्छेत्

४ असत्पदार्थानुभवे न किंचित्, न ह्यस्ति तृप्तिर् न च दुःख-हानिः
तत् अद्वयानंद-रसानुभूत्या, तृप्तः सुखं तिष्ठ सदात्म निष्ठया

५ स्वमेव सर्वथा पश्यन् मन्यमानः स्व मद्वयम्
स्वानंद मनुभुंजानः कालं नय महामते

६ अखंड-बोधात्मनि निर् विकल्पे, विकल्पनं व्योम्नि पुरः प्रकल्पनम्
तत् अद्वयानंदमयात्मना सदा, शांतिं परां एत्य भजस्व मौनम्

७ नास्ति निर् वासनात् मौनात् परं सुखकृ दुत्तमम्
विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानंदरस-पायिनः

८ गच्छन् तिष्ठन् उपविशन् शयानो वान्यथापि वा
यथेच्छ च वसेत् विद्वान् आत्माराम सदा मुनिः

९ न देश-कालासन-दिग्यमादि-लक्ष्याद्यपेक्षा प्रतिबद्ध-वृत्तः
प्रसिद्ध-तत्त्वस्य महात्मनो ऽस्ति, स्व-वेदने का नियमाद्यपेक्षा

१० अय आत्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते
न देशं नापि वा कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते

११ एष स्वयञ्ज्योतिरनंत-शक्तिः, आत्मा ऽप्रमेयः सकलानुभूतिः
यमेव विज्ञाय विमुक्त-बंधो, जयत्यय ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः

१२ न खिद्यते ना विषयैः प्रमोदते, न सज्यते नापि विरज्यते च
स्वस्मिन् सदा क्रीडति नंदति स्वयं, निरंतरानंद-रसेन तृप्तः

१३ क्षुधां देह-व्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी

१४ चिंताशून्य-मदैन्य भैक्ष-मशनं पानं सरिद्-वारिषु
स्वातंत्र्येण निरंकुशा स्थितिरभीः निद्रा श्मशाने वने
वस्त्रं क्षालन-शोषणादि-रहितं दिग् वास्तु शय्या मही
संचारो निगमांत-वीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि

१५ विमान मालम्य शरीरमेतद्
भुनक्त्यशेषान् विषयान् उपस्थितान्
परेच्छया बालवदात्मवेत्ता
यो ऽव्यक्त-लिंगो ऽननुषक्त-बाह्यः

१६ दिगंबरो वापि च सांबरो वा, त्वगंबरो वापि चिदंबरस्थः
उन्मत्तवद् वापि च बालवद् वा, पिशाचवद् वापि चरत्यवन्याम्

१७ कामान् निष्कामरूपी सन् चरत्येकचरो मुनिः
स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः

१८ क्वचित् मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराज-विभवः
क्वचिद् भ्रांतः सौम्यः क्वचिदजगराचार-कलितः
क्वचित् पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदितम्
चरत्येव प्राज्ञः सतत-परमानंद-सुखितः

१९ अशरीरं सदा सत इमं ब्रह्मविदं क्वचित्
प्रियाप्रिय न स्पृशतस् तथैव च शुभाशुभ

२० स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नत-स्थलम्
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु

२१ प्रारब्धकर्म-परिकल्पित-वासनाभिः
संसारिवत् चरति भुक्तिषु मुक्त-देहः
सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं
चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्प-शून्यः

११८ ब्रह्म विहार

१ जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः
उपाधि-नाशात् ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम्

२ शैलूषो वेष-सद्भावाभावयोश्च यथा पुमान्
तथैव ब्रह्मवित् श्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः

३ यत्र क्वापि विशीर्णं, सत्पर्णमिव तरोर् वपुः पतनात्
ब्रह्मीभूतस्य यतेः, प्रागेव हि तत् चिदग्निना दग्धम्

४ कुल्यायां अथ नद्यां वा शिव क्षेत्रे ऽपि चत्वरे
पर्णं पतति चेत् तेन तरोः किं नु शुभाशुभम्

५ क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले
संयुक्तं एकतां याति तथा ऽऽत्मन्या ऽऽत्मवित् मुनिः

६ एवं विदेह-कैवल्यं सन्मात्रत्वं अखण्डितम्
ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यतिर् नावर्तते पुनः

७ इति श्रुत्वा गुरोर् वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्त-बंधनः

८ गुरुर् एव सदानंद-सिंधौ निर्मग्न-मानसः
पावयन् वसुधां सर्वां विचचार निरंतरम्

९ इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्म-लक्षणम्
निरूपितं मुमुक्षूणां सुख-बोधोपपत्तये

१० हितमिम मुपदेश माद्रियन्तां
विहित-निरस्त-समस्त-चित्त-दोषाः
भवसुख-विरताः प्रशांत-चित्ता
श्रुति-रसिका यतयो मुमुक्षवो ये

११ संसाराध्वनि तापभानु किरणप्रोद्भूत-दाहव्यथा-
खिन्नानां जल-कांक्षया मरु-भुवि भ्रांत्या परिभ्राम्यताम्
अत्यासन्न-सुधांबुधिं सुखकरं ब्रह्मा द्वयं दर्शयन्त्येषा
शंकर भारती विजयते निर्वाण-सन्दायिनी